अथ

पतितोद्धार.

प्रार्थना.

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि। रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम् ॥ यजु० अ. १८ मं० ४८

[हे परमेश्वर ! हमारे ब्राह्मणों में प्रेम स्थापित कीजिये, हमारे राजाओं में प्रेम स्थापित कीजिये, हमारे वैश्यों और शूद्रों में प्रेम स्थापित कीजिये और मुझ में प्रेम के साथ प्रेम अर्थात् अविच्छिन्न प्रेम स्थापित कीजिये.]

विवेचन और लोकमत

उत्थानिका.

जिस हिन्दु (आर्य) जाति का जातीय साम्राज्य सारी पृथ्वी पर लाखों, नहीं नहीं, असंख्य वर्षों अथवा अनादिकाल से रहा हो उस के लिए राष्ट्र-निर्माण का महत्वपूर्ण प्रश्न बडी दक्षता से समाधान करने योग्य है. धर्म और जातीयता का परस्पर घनिष्ठ संबन्ध है, जातीयता धर्म से ऐसे ही चिपटी हुई है जैसे अशोक वृक्ष से नवमल्लिका लता. ऊंचे

शुद्ध समीर के सेवन से अपना पवित्र जीवन रखने के लिए नवमल्लिका को जिस प्रकार अशोक जैसे तरुवरों की आवश्यकता है वैसी ही आवश्यकता जातीयता को धर्म की है. अशोक आदि के छिन्न होने पर जो हीन दशा उस लता की होती है वही धर्म विना जातीयता की. धर्म शब्द के अर्थ–गाम्भीर्य पर विचार करने से यहां तक पता लगता है कि धर्म ही जीवन है. धर्म का अभाव मृत्यु. धर्म वस्तुतः ऐसी वस्तु ही नहीं जिस का नाश हो, परन्तु धर्मी के अन्दर से धर्म का अभाव ही धर्म की ग्लानि या **धर्म का नाश** आजकल की परिभाषा में माना जाता है. यही भाव ठीक है. एक हीरा यदि हमारे अधिकार से नितान्त बाहर चला गया तो वह हमारे लिए तो नष्ट सा ही है चाहे वह कहीं अन्यत्र अपनी सत्ता भले ही रखत हो. सत्यता का गुण यदि एक व्यक्ति के अन्दर नहीं तो इस का यह अर्थ नहीं कि सत्यता नष्ट हो गई किन्तु ' वह व्यक्ति सत्यपालन नहीं करता ' यही अर्थ होगा. सार यही है कि सत्यव्रत के फल से वह वञ्चित रहेगा. ' धर्म ' के ऊपर आर्यधर्म के ग्रन्थों का विवेचन थोडा नहीं; उस की आवश्यकता सब से अधिक और अनिवार्य बतलाई गई है. जर्मनी के प्रसिद्ध प्रोफेसर मेक्समूलर धर्म की आवश्यकता के विषय में लिखते हैं कि "........ वह वस्तु ग्रहण करो जो अपने सब विचारों और आचारों को आश्रय देती है, विस्तृत

धर्म की आवश्यकता और जर्मनी के प्रो० मेक्समूलर के विचार.

करती और सत्य मार्ग दर्शाती है. जिस वस्तु के विना ग्राम्यपंच अथवा राज्यमंडल, प्रथा अथवा तो नियम, सत्य अथवा तो असत्य, इन सब की सत्ता होनी ही अशक्य है, वह वस्तु ग्रहण करो जिस वस्तु से ही भाषा को उपेक्षित करें तो—मनुष्य और पशुओं का असामान्य और चिरस्थायी भिन्नत्व विद्यमान है, जिस से ही यह जीवन शक्य है और हम सर्व दुःख सहन कर सकते हैं और जो वस्तु यद्यपि गूढ है तथापि प्रायः मनुष्यजीवन के गुप्त प्रवाह का रूप धारण कर रही है, सर्व प्रजा के चैतन्य का आधार है, सर्व इतिहासों का इतिहास तथैव सब रहस्यों का रहस्य है उसे ग्रहण करो, वह धर्म है, उस का ग्रहण करो और **आर्यावर्त** जो ब्राह्मणधर्म का वास-स्थान है, बुद्ध धर्म का जन्मस्थान है, पारसी धर्म का आश्रयस्थान है, अभी प्रत्युत नवीन संप्रदायों का उत्पत्तिस्थान है और—उन्नी-सवीं शताब्दी तक चढा हुआ मल दूर हो तो—भविष्य में **परम-पवित्रधर्म** का पुनरुत्थान का स्थान भी बने-वैसे **आर्यावर्त्त** देश के सिवा दूसरे किस देश में तुम धर्म की वृद्धि और क्षय का अधि-क सुगमता से अध्ययन कर सकोगे "

यह है धर्म की आवश्यकता और हमारे प्राचीन धर्म के विष-य में प्रबल साक्ष्य. मेकसमूलर साहब ने अपनी 'चीप्स फ्रॉम ए जर्मन् वर्कशाप्' नामक पुस्तक में यह बडे जोर से लिखा है कि "दुनियां के पुस्तकालय में सब से प्राचीन पुस्तक वेद है." इसी प्रकार

अन्य भी कई विदेशी विद्वानों ने लिखा है, हमारे आर्यधर्म के प्राचीन और उत्तमताओं से पूर्ण होने में प्रमाण और साक्षियों की साहित्य में तो भरमार ही है, यहां तक कि अन्य सब कल्पित धर्मों का आदिमूल ही इसे माना जाता है.

वैदिकधर्म, आर्यधर्म, ब्राह्मणधर्म और हिन्दुधर्म यह शब्द पर्याय-वाची हैं. इसी जातीयता के आधारभूत धर्म को मानवधर्म भी कहा है. मानवसमाज का एक ही धर्म है. भिन्न अनेक नहीं. मनुष्य की अल्पज्ञता, निर्बलता उस के जीवन में विलक्षणता लाती रहती है.

वैदिक धर्म के अभिमानी आद्यसृष्टि एक ही साथ एक ही स्थल त्रिविष्टप में मानते हुए भी अपनी मनुष्य जाति के भिन्नदेशीय व्यक्तियों को अपना भाई, संम्बन्धी मानने में हिचकते हैं, इतना ही नहीं किन्तु दिनरात के सहवास में रहने वाले आर्यावर्तीय भाइयों को भी अपना भाई समझने में उन्हें बडी देर लगती है. इतिहास पर रूढि के गाढ बादलों ने इतना घोर अन्धकार का परदा डाला कि भाई को भाई का गले से मिलना तो क्या, सदा के लिए बिछोहा ही हो गया. और ऐसा लम्बा बिछोहा हुआ कि अब कुछ प्रकाश होने पर भी भाई को भाई पहिचानने में असमर्थ है. क्या ही बुरा चित्र सामने उपस्थित है. कहां तो धर्म की इतनी विशालता कि उस को मनु ' मानव धर्म ' कर के लिखें और कहां उस **मानव**-

धर्म को—किसी समुदाय भी नहीं किन्तु-व्यक्तियों के नाम और उन की पुस्तकों के आधार पर, रूढि में लाकर अत्यन्त संकुचित बनाया जाय. हमारे उपर्युक्त लेखानुसार स्मरण रहे कि धर्म संकुचित नहीं होता किन्तु उस के अनुयायी संकुचित भावों से पूर्ण होते हैं

उन्नति यह एक अभीष्ट वस्तु है. दो साझीदार अपनी २ उन्नति की अभिलाषा में जब मग्न होते हैं तब यह भावना ही उन को स्थिर रखती है कि वह दूसरा मुझ से बढ़ न जाय, साझा=ऐक्य में भी अपनी २ उन्नति बिसारी नहीं जाती, फिर हम **मानव**-धर्म के सिद्धान्त को मानते हुए यह क्योंकर भूल सकते हैं कि हमारा सार्वभौमधर्म क्षय को प्राप्त हो. कल्पित धर्मों के साझीदारों से स्पर्धा तो तब मानी जा सकती है जब हम उन्हें दूसरे धर्म का समझें. जब धर्म ही दूसरा नहीं तो उस के अनुयायी कहां से ? और स्पर्धा किस से ? यह भाव उदारतापूर्ण है, इस को हृदय से मानने वाले थोडे निकलेंगे, इस लिए सर्व साधारण के लिए हमें यह भी कहना पडेगा कि जिस प्रकार एक बडे परिवार के भिन्न व्यक्ति जब अपने २ कर्त्तव्य-पालन पर आरूढ होते हैं तब उन्हें—अपने परिवार का व्यक्ति होने पर भी—दूसरे व्यक्ति के कर्त्तव्य पूर्ति की इतनी परवाह नहीं होती जितनी कि अपने कर्त्तव्य की. राम और सीता का वन जाते समय का वार्तालाप यही बतलाता है कि अपने कर्त्तव्य की परवाह करो.

राम कहते हैं ' तुम्हें वन में बडे दुःख होंगे साथ मत चलो, सीता कहती हैं ' मेरा कर्त्तव्य है कि आपकी सहचारिणी रहूं ' अथवा यों कहिये कि जिन से हमारा अधिक संबन्ध है उन्हीं के प्रति हमारे अधिक कर्त्तव्य हैं. जिन से संबंध टूट चूके हैं उन से प्रथम तो संबन्ध जोडने की चर्चा करनी ठीक है पश्चात् उन के प्रति हमें विशेष कर्त्तव्य करने होंगे.

चातुर्वर्ण्य शब्द की सार्थकता.

धर्म की महत्ता और उपयोगिता यदि संसार में कुछ वस्तु है तो उसे अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक होगा, जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है. राष्ट्र की स्थिति के आधार, धर्म को ताक में रख छोडने से काम नहीं चल सकता. रूढियों के अनुकूल चल कर बिरादरियों में नाम कमाने से अथवा अमुक प्रकार के केवल चिन्ह धारण करने से जातीय जीवन नहीं रह सकता. हिन्दुधर्म को यदि चातुर्वर्ण्य शब्द से पुकारें तो असंगत न होगा. चातुर्वर्ण्य शब्द चार वर्णों के सर्वांगपूर्ण और सुन्दर होने पर ही यथार्थ होगा. यदि इन में से एक भी कम या बिगडा हुआ हो तो चातुर्वर्ण्य कैसे कहा जाय? एक पैर की कमी या बिगडे हुए होने पर ' लंगडा, शब्द प्रयोग में लाया जाता है. सारांश यह कि हिन्दु धर्म चारों वर्णों की व्यवस्थित स्थिति को कह सकते हैं. क्या इस व्यवस्था का वर्त्तमान समय में कुछ आदर किया जाता है? उत्तर मिलेगा कुछ नहीं, कितने आश्चर्य और

शोक का स्थल है कि जिस पवित्र देश में गंगा जैसी देवनदी, सोमयाग जैसे यज्ञ, ब्रह्मविद्या के उपदेष्टा ऋषि और सर्व विद्याओं के भंडार वेदों की सत्ता हो, जहां योगी जनों की कुटियां, ऋषियों के अनन्य शोभायुक्त सुशान्त आश्रम, सुव्यवस्थित चार आश्रमों की प्रथा, राम, कृष्ण, बुद्ध, शंकर और दयानंद जैसे अवतार * हो चुके हों उसी भारत जननी के करोडों आत्मज पतित, अस्पृश्य माने जांय ? यहां तक कि उन में से करोडों स्वजननी के घातक बन जांय ? समय ! तेरी लीला कौन जाने. जिस भारत के रजःस्पर्श से पत्थर सुवर्ण होता हो अथवा यों कहिये कि निर्धन कुबेर बने और मूर्ख बृहस्पति बन जाय वहां पतित कौन और क्यों ? यह एक प्रश्न है, इसी का उत्तर यह पुस्तक होगी.

पतित शब्द का रहस्य.

'पतॢ=पतने' धातु से पतित शब्द बनता है जिसका अर्थ 'गिरा, हुआ, होता है जो गिरा वह कहां से गिरा ? उत्तर मिलेगा किसी ऊंचे स्थान से, इतने से यह सिद्ध होता है कि गिरने से पूर्व वह पतित नहीं था. पतित जातियों का अर्थ यह साफ समझ में आता है कि वह हमेशा से पतित नहीं किन्तु पूर्व के चातुर्वर्ण्य के अंग हैं. अतः यह भी अच्छी तरह समझ लीजिये कि "चातुर्वर्ण्य" शब्द ही से यह कोई बाहर की चीज़ है, क्योंकि चातुर्वर्ण्य धर्म के अन्दर वर्त्तमान तो कोई व्यक्ति पतित

* यहां इस शब्द का अर्थ 'जन्मधारी' ही है

नहीं कहा जा सकता किन्तु उस धर्म से गिरे हुए ही के लिए पतित शब्द प्रयुक्त होगा अर्थात् कितने ही शूद्रों को पतित और अनधिकारी कहने और समझने लगते हैं सो नितान्त असंगत है क्योंकि शूद्र तो चातुर्वर्ण्य के वर्णों हैं वह बहिष्कृत नहीं. आज कल पाधाओं को ब्राह्मण, ठाकुरों कों क्षत्रिय और बनियों को वैश्य तो मान लिया परन्तु शूद्र बिचारे कौन २ सी जातियों के लोग माने ? यह कल्पना भी तो कर लेनी चाहिये थी, जिस से कम से कम जन्म की मुहर तो शूद्र कहने को हो जाती. परन्तु—हमारे उपर्युक्त विचार से—शूद्रों की तो महती उपेक्षा की गई है, ' चातुर्वर्ण्य, के अर्थ पर धूल डाली गई है. चातुर्वर्ण्य धर्म का संगठन यही सिद्ध करता है कि चार वर्ण किसी एक अंगी के चार अंग हैं. शरीर के भिन्न अङ्ग अपने २ कर्त्तव्यों से भिन्न होते हुए शरीर से भिन्न नहीं होते. चक्षु जैसे पवित्र स्थल और मलमूत्र त्याग के जैसे अशुद्ध अंग नित्य प्रति शुद्ध हो कर अंगी के साथ ही सम्मिलित रहते हैं. मखमल के गद्दी तकिये और सुवर्ण के सिंहासनों पर क्या इन को वहिष्कृत कर दिया जाता है ? शिर, भुजा, मध्यांग और चरण क्या एक दूसरे के पूर्ण हितैषी और सेवक नहीं ? क्या अकेला शिर, अकेली भुजाएं आदि अंग सुशोभित हो कर अपना जीवन रख सकते हैं ? पैर बिना सारे शरीर की क्या दशा होगी, जरा उस चित्र को मन में लाइये. परस्पर

शरीर के संगठन से पाठ.

प्रत्येक अंग एक दूसरे की आवश्यकता का प्रार्थी है और रचना से यह सिद्ध कर रहा है कि भिन्नता और उपयोगिता, उच्चता और अधमता के होते हुए भी अमुक अंशों में सब अंग समान हैं. नेत्रों को किसी सुन्दर दृश्य के देखने को जब कहीं जाने की इच्छा होती है तो पैर ही उसे पूर्ण करते हैं. दूसरे प्रसंग पर नेत्र भी उन पैरों की दशा को ध्यान से स्वयं देखते हैं और भुजाओं से उन के धोने आदि की शुश्रूषा करवाते हैं, पैर में काँटा लगने पर सारे अंग ऐसे ही दुःखी होते हैं जैसे अपने-बच्चे की वेदना में जनक, जननी. यह दृष्टान्त यही सिद्ध करते हैं कि चातुर्वर्ण्य धर्म के धर्मी (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) सहधर्मी और समान अधिकार प्राप्त एक हैं, केवल कर्त्तव्यदृष्टि से भिन्न हैं, अर्थात् शूद्रों के विषय में पतित, नीच आदि शब्दों का प्रयोग करना सनातन वर्णव्यवस्था को कलङ्कित करना है. अब प्रश्न यह होगा कि पतित कौन ? इस का उत्तर हम ऊपर कह ही चुके हैं कि धर्म (चातुर्वर्ण्यधर्म) से गिरने वाले को ही पतित कहा जा सकता है इस लिए चार वर्णों में तो कोई भी अपने कर्त्तव्य पर दृढ रहते हुए तो पतित हो नहीं सकता, और मानवधर्म के अन्दर चार वर्ण अर्थात् मनुष्यमात्र के कर्त्तव्य आ जाते हैं, फिर यदि कोई पतित होगा तो वही जो चातुर्वर्ण्यधर्म से गिरा हो. इसे यों समझिये कि मनूक्त अथवा वेदोक्त चारों वर्णों के धर्मों (कर्त्तव्यों) की चार सूचियां बनाइये, फिर प्रत्येक जन-

समुदायों अथवा व्यक्तियों पर दृष्टि डालिये, जो जिस कर्त्तव्य में लगा हो उस को उस २ सूची में लिखते जाइये, इस हिसाब में जो व्यक्ति चारों सूचियों में लिखे जाने योग्य न हों समझ लीजिये वह पतित हैं. आप कहेंगे यह तो बडी जल्दी सरल फैसला दे दिया परन्तु आप इस फैसले को मन में न्यायदृष्टि से विचारेंगे तो आत्मा को प्रिय लगेगा. हमारे इस कथन का यही तात्पर्य है कि जो लोग पतितों के घर में भी जन्म ले चुके हैं उन के शुद्धाचारी होते हुए जो शुद्धि और प्रायश्चित्त का ढोंग रचा जाता है वह भी व्यर्थ सा है और साथ ही बिरादरी के एक भाई में गुप्त रीति पर तमाम दुनियां के दुराचारों के घर कर लेनेपर भी उसके साथ खाने पीने, उठने बैठने और स्पर्श करने में दोष नहीं माना जाता, यह सरासर अन्याय नहीं तो क्या है ? उस को 'पतित' की व्यवस्था देते क्यों भय किया जाता है, जब कि वह चातुर्वर्ण्यधर्म से गिर गया, क्यों न उस को बहिष्कृत किया जाता अथवा प्रायश्चित्त कर के ही बिरादरी में क्यों न लिया जाता ? यदि यह न्याय की व्यवस्था प्रचलित हो तो संसार से पतितपना उठने में अनेक शताब्दियों की आवश्यकता न रहे.

आज कल चमार, भंगी, नट, कंजर आदि और जो हिन्दु धर्म को तिलाञ्जलि दे चुके हैं वे ही पतित माने गये हैं और उन के ही उद्धार का बीडा उठाने की चर्चा जहां तहां होती है, परन्तु स्मरण रहे कि उपर्युक्त चार सूचियों की व्यवस्था से केवल इन को ही

पतित समझने और इन के ही उद्धार की ओर हमारा प्रवाह न बहना चाहिये किन्तु उन सूचियों से बाहर रहे सभी पतितों पर यह उद्धार की चिन्ता करने की आवश्यकता है, क्योंकि पतित पतित सब समान. तथापि माने हुए पतित और हिन्दुधर्म का अभिमान छोड अन्य मार्ग स्वीकार करने वालों के प्रति ही यह उद्धार की जो आवाज़ उठाई जाती है इसका एक मात्र यही हेतु है कि यह लोग हिन्दु समाज से बिल्कुल अलग (वहिष्कृत) किए गये हैं, समाज के लाभों से वञ्चित हैं, अत एव इन्हें अपनी दशा का भी भान नहीं, उन्नति और सुधार का अर्थ तो फिर कहां से समझें? घर में सब से छोटे (निर्बल) बालक की चिन्ता और रक्षा का बड़े की अपेक्षा जैसे अधिक ध्यान रक्खा जाता है वैसे ही समाज-सम्मिलित पतित व्यक्तियों की अपेक्षा इन समाजवहिष्कृत पतितों की रक्षा करना प्रथम कर्त्तव्य है. यह प्रत्यक्ष है कि जिस व्यक्ति से छू जाने तक से धर्मभ्रष्टता का भय हो वह संग और सहवास का लाभ कैसे उठावे, यह छूत का भूत ही एकमात्र इन के पतन का कारण बन रहा है, इस लिए इस विषय पर कुछ विचार करना आवश्यक होगा, नहीं तो फल यह होगा कि हिन्दु जाति एक नामशेष वस्तु रह जायेगी. छूत के भूत ने अभी तक तो कई प्रान्तों में पतितों को ६० कदम दूर चलने की प्रथा चलाई है, परन्तु इस विषय पर ध्यान न देने से वह दिन आना दूर नहीं जब कि वह हमेशा को दूर और

अति दूर हो जायेंगे. जैसे कि इस समय लगभग ४० लाख देशी भ्राता क्रिश्चियन हो कर हिन्दू धर्म से अति दूर हो गये. यह हमारे वहिष्कार और घृणित व्यवहार का फल नहीं तो क्या ?

श्रीयुत पंडित शिवकुमार शास्त्री जी ने असाधारण उदारता और धर्म्मपरायणता का अच्छा परिचय दिया है.

काशी के महामहोपाध्याय श्रीयुत पंडित शिवकुमार शास्त्री का पतितों को चातुर्वर्ण्य में गिनना.

काशी के लोगों की ओर से पतित जातियों के विषय में जन संख्या की जांच पर ३, ४ दिसम्बर १९१० ई० में सभा की गई. थी संचालकों ने पण्डित जी से सभापति बनने की प्रार्थना की, आप ने सहर्ष स्वीकार कर लिया और काशी के सनातन धर्म्मावलम्बियों के एक मात्र प्रतिष्ठित प्रतिनिधि ने सभापति का आसन ग्रहण कर निम्नलिखित वक्तृता दी.

" सज्जनों ! आज की सभा का उद्देश्य क्या है ? मुसलमान लोग उन्नति करते जाते हैं यह जान हमें आनन्द होता है, मगर अपनी उन्नति से हिन्दुओं को हानि पहुंचाना उचित नहीं, हिन्दुओं के अन्त्यज डूम, चर्मकार (चमार) भर, भल पासी, हिन्दू नहीं हैं, ऐसा कहना हिन्दुओं को हानि पहुंचानी है, इस प्रकार हिन्दू कम हो जायेंगे. धर्म्मी के कम हो जाने से धर्म्म का भी व्याघात अवश्य होता है, (पीछे से अन्त्यज जातियों के लोग हाथ बाँधे कहते जा रहे थे, (भगवन् सब कह रहे हैं, हम तो आदि काल से

हिन्दू हैं. इत्यादि) इस लिये सब हिन्दुओं को उचित है कि वह सरकार से प्रार्थना करें कि वह हिन्दु हैं. वह वैसे ही माने और लिखे जावें जैसे पहिले लिखे जाते हैं. भगवान् मनु ने कहा है कि वेदविहित चारों वर्णों के पश्चात् दो प्रकार के और शूद्र हैं **एक** अनुलोम शूद्र और दूसरे प्रतिलोम शूद्र, अनुलोम शूद्र वह हैं जो द्विज पुरुष और शूद्रा स्त्री के समागम से उत्पन्न होते हैं. प्रतिलोम शूद्र वह होते हैं जिनकी मां उत्तम कुल उत्पन्ना हो और पिता शूद्र-कुल से, उन के समागम करने का वह फल हैं. **रजक, चर्मकारादि इसके विपरीत हैं. इनके धर्म्म "शूद्राणाम् सधर्म" के अनुसार शूद्रों के समान हैं.** शूद्र ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करते हैं, इनसे समाज का उपकार होता है, इनको हिन्दू धर्म्म से बाहर नहीं मान सकते. हिन्दुओं से भिन्न यवन हैं, अब एक ईसाई और आगये हैं. **यवन का लक्षण जो गोमांस खाये और विपरीत आचरण करे, दिया है.** उसी को म्लेच्छ भी कहते हैं। अन्त्यजों में हम **राम कृष्ण** का नाम देखते हैं. **यह सब आदि सृष्टि से हिन्दू हैं.** हिन्दुओं से बाहर नहीं." न्याय व्यवस्था यही है. हिन्दू धर्म के भूषण विद्याकेन्द्र के प्रमुख के विचारों को ज़रा दुबारा पढ़िये !

छुआ छूत पर तार्किक अवलोकन.

पतितों को अस्पृश्य मानने में आज कल जो कारण बतलाये जाते हैं उन पर कुछ संक्षिप्त विचार करना आवश्यक है, प्रायः यह कहा जाता है कि (१) यह लोग गन्दे रहते हैं (२) मरे

हुए पशु को खींच ले जाते हैं और उस की खाल उतारते हैं. (३) मरे हुए पशु का मांस खाते हैं. (४) चमड़ा पकाने का काम करते हैं. यह चार ही कारण इन के अस्पृश्य मानने में सवल हो सकते हैं. इन का क्रमशः उत्तरः—

(१) जितने गन्दे मैले कुचैले यह रहते हैं उतने ही मैले अन्य कई जातियों के लोग भी रह ते हैं, जो कि अस्पृश्य नहीं माने जाते. सच पूछिये तो आज कल बहुत से रोगों के फैलाने में हलवाई, रसोइया, धोबी और हजाम मुख्य कारण बन बैठे हैं. हलवाइयों के मलीन वस्त्रों और चिलम के पिये थूक लगे हाथों से मिठाई बनाना आंख से देख खाने से किसे अत्यन्त घृणा नहीं होती ? ऐसी मिठाई से तो सूखे चने अच्छे. बाजारों में रात को प्रायः लोग सडकों के किनारे लघुशंका करते हैं, जो कि सवेरे तक सूखकर रेत के रूप में मिली तय्यार रहती है. हलवाई सवेरे ही सजे थाल जमाने लगता है, इतने में पवन देवता वेग से उस तय्यार रेत को तय्यार थालों पर फेंकता है. उधर प्रातःकाल ही भंगी झाड़ू लगा कर उस पेशाब से बसाई हुई धूल को मिठाई पर बल्कि मुहल्ले भर में फैला देता है. इस गंदगी का भी बिचार कभी किया जाता है ? इसी लिये स्वयंपाक की पद्धति चली होगी. रसोइयों का स्वभाव मशहूर ही है कि आटा गूंदते जाना और बीच२ में नाक का मैल पहिरी हुई धोती से पोंछते जाना और नाक का पसीना आटे में गिराना, बना तो बीच में एकाद ग्रास मुंह

में भी डालते जाना. धोबी के यहां--दुनियां में अधिक से अधिक भ्रष्ट और मलीन से मलीन वस्त्र धुलने जाते हैं और प्रायः सब के वस्त्र सेलभेल होते हैं. सब का रस भट्टी में एकमय होता ही है. इसी लिये पुराने ख्याल के कितने ही लोग धोबी के वस्त्र देना अच्छा नहीं समझते. कितने ही अंगरेज़ और अच्छी स्थिति के भारतीयजन स्वतंत्र धोबी रख लेते हैं. यह अच्छा है. सब से अच्छा तो अपने हाथ का धोना ही है. हज्जाम देवता तो गिलाज़त के मानो प्रत्यक्ष स्वरूप ही हैं. सामने आ कर विराजे नहीं कि लगीं छूटने उन के पेटीबंद की लपटें और वह 'शरीर तो शरीर' दिमाग़ को भी सड़ाने में कसर नहीं रखतीं. गन्दे से गन्दे और भयंकर रोगों से ग्रस्त लोगों के अंगों पर फिरा हुआ छुरा मानो रोगप्रचारक असली उपदेशक है. पैसे के लोभ से उनका छुरा सब तरह की सैर किये हुए होता है. बतलाइये कि क्या ? न्हाया धोया भगत चमार इन ऊपर की गंदगियों से भी अधिक गन्दा है ?

(२) प्रथम तो मरे पशु को खींचना उन की स्वतः इच्छा नहीं, यह खिचवाने वालों का उन पर अत्याचार ही है, और इस पाप का फल करवाने वालों पर ही है, तो भी इस में दोष क्या ? घर के अंदर बिल्ली चूहे आदि को और स्वयं मनुष्य के शव को क्या चमार ही उठाने आते हैं ? विचार शील समझ सकते हैं कि एक आदमी से चोरी करा के और फिर उसे चोर कहना कहां तक न्याय-

युक्त है ? मनुष्य के शव को जब द्विज उठाते हैं तो वह पशु के शव के उठाने में क्यों अपवित्र ? प्रत्युत मनुष्य के शरीर के मल से पशुओं का गोमय आदि पवित्र होता है अर्थात् पशुओं का शरीर अपेक्षा से पवित्र होता है. रही यह बात कि वह लोग पशुओं की खाल उतारते हैं इस में उन लोगों का अधिक दोष है जो चमड़े की चीजें काम में लाते हैं, नहीं तो यह लोग क्यों यह गंदा कार्य करें ? तथापि क्या आज कल हजारो द्विज माने हुए लोग बडे२ डाक्टरों की पदवियां धारण कर प्रतिदिन हास्पिटलों में सड़े रोगियों के शरीरों की काट छांट नहीं करते ? चमार आदि तो रोजाना भी नहीं किन्तु कभी २ करते हैं, सो भी मनुष्य से अधिक पवित्र पशु के शरीर की, परन्तु डाक्टर साहब तो रोजाना गन्दे मनुष्य की गत बनाते हैं. यहां तक ही नहीं किन्तु डाक्टरी के विद्यालय में प्रवेश करते ही पहले विद्यार्थी जी को मनुष्य का मुर्दा ही सब गत करने को दिया जाता है और वह नित्य नये मुर्दों पर अपना प्रयोग करते रहते हैं.

(३) मुर्दे पशु के मांस खाने का दोष भी कुछ उच्च जातियों के हिस्से में आ जाता है. वह इस लिए कि उन को बहिष्कृत कर अपने से इतना दूर और अधम बनाया है कि उनके आहार और आजीविका तक का द्वार बंद कर रक्खा है, धन्य है उन २ चमार आदि को जिन्हों ने इस **आपद्धर्म** को पाल कर भी सब दुःखों की सीमा को उलांघ कर अपने को हिन्दु धर्माभिमानी बनाये रक्खा, परन्तु

इस में भी यह प्रश्न है कि क्या जीवित के मांस और मुर्दे के मांस में कुछ विशेष अंतर है ? अथवा यों भी कहिये कि क्या किसी को मुर्दा किए विना उसका मांस खाने को मिल सकता है ? नहीं कदापि नहीं, तौ भी आज कल कुछ साइंस की सहायता से कहा जायेगा कि अपनेआप मरे हुए के मांस में अणु अधिक भ्रष्ट अथवा रोगोत्पादक होंगे इसलिए उसे न खाना चाहिये. इस के उत्तर में उदाहरण के तौर पर सन् १५०८ ई० की हमें वह घटना याद आती है जो कि हमने अपनी आंखों से देखी, वह यह कि भरतपुर राजधानी में क़िले की विशाल नहर के जल की मछलियों में कुछ ऐसा रोग फैला कि एक सप्ताह में असंख्य बड़ी २ मछलियां मर गईं, जिस दिन से मरना आरम्भ हुआ मांस-लोलुप लगे ताकने और झट शिकार करना शुरू कर दिया. जब कोई कहे भी कि यह तो रोग से मरी है, तो जवाब मिले कि वाह ? हम तो शिकार करके लाये हैं. सारांश यह कि असंख्य रोगग्रस्त मछलियां मरी और अधमरी मांसाहारियों के पेट की मट्टी बनीं. बतलाइये कि इस समय साइंस के भ्रष्ट अणु कहां उड़ गये थे ? यह तो प्रसिद्ध ही है कि बीमारी आदि से मरती बकरी को अपनी मौत से नहीं मरने देते किन्तु कुछ काल पहिले ही उसे ठिकाने लगा देते हैं. यह सब क्या मुर्दे का मांस नहीं ? कसाई लोग प्रायः बीमार पशुओं का मांस बेचते हैं, सो क्या ?

कौन कह सकता है कि जर्मनी आदि से सिद्ध आई हुई औष-धियों में किन २ पशुओं के शरीर का क्या २ भाग नहीं होता? ऐसे ही वहांकी पेय औषधियां कहां तक पवित्र हैं? अथवा ग्राम्य सुअर और मुर्गा आदि का मांस खाने वाले उच्च हिन्दु भ्राता कहां तक उन अणुओं की पवित्रता सिद्ध कर सकते हैं? उत्तर में केवल मौन.
(४) चमड़ा पकाने की बात तो बिलकुल साधारण है, जिस तरह थोड़े ठाठ से अपने गढ्ढे में कपड़ा बुनने वाला कोली या जुलाहा है और एक विलायती एंजेन से बुनने का बड़ा कारखाना खोलने वाला 'प्रोप्राइटर ऑफ वीविंग मिल्स' है, उसी तरह थोड़े ठाठ में चमड़ा पकाने वाला तो चमार, अथवा अस्पृश्य और चमड़े के बड़े कारखाने का मालिक "लेधर फेक्टरी के मैनेजर साहब" हैं. परन्तु यह कौन विचारता है कि मैनेजर सा० ने बर्षों विलायत में रह कर सब पशुओं का कच्चा, सड़ा चमड़ा पकाने का काम सीखने में चर्मकार को भी मात किया है. आफ़त तो चमार की है कि चाहे कुछ हो वह अस्पृश्य ही है. लेधर फ़ेक्टरी (चमड़ा पकाने के कारख़ाने) को जिन्हों ने देखा है वह वहां की दशा से अपरिचित नहीं रह सकते, चमारों के मुहल्ले में तो आप को एकवार ध्यान न भी आवे कि यह गन्दा मुहल्ला है पर लेधर फ़ेक्टरी तो अपना परिचय मस्तिष्क तक पहुंचाती है. गुजरात आदि प्रदेशों में गजी गाढा बुनने वाले वणकर तो अस्पृश्य, और लेधर फेक्टरी में काम करने वालों के साथ भोज

उड़ाया जाय ? धन्य है इस न्याय को. उपरोक्त चार बातों का यह संक्षेप से समाधान हो गया. अब यदि आप के सामने इस प्रकार के और भी चित्र रक्खे जांय तो आप अवश्य कह उठेंगे कि पतित माने गये लोगों में औरों से विशेष अछूतपना कुछ भी नहीं है.

हिन्दुओं के आधुनिक शौचधर्म के खरे चित्र पर तार्किक दृष्टि.

सुनिये थोड़ा और, मनुष्य की अल्पज्ञता जब सीमा से अधिक हो जाती है तब बहुत बुरे परिणाम दिखलाती है. हम जिन्हें पतित २ कह कर धिक्कारते हैं 'उन के मुक़ाबले में हम कहां तक शुद्ध हैं' इसे ज़रा वास्तविक रूप में देख लेना अनुचित न होगा, आवश्यक है कि स्वच्छता सम्बन्धी थोडा दिग्दर्शन और भी यहां पर किया जाय. शौचधर्म मनुष्य के जीवन को शुद्ध बनाने की एक अनिवार्य वस्तु है, शास्त्रों में इस विषय पर बड़ा अच्छा विवेचन और विधान है, परन्तु अभागे हिंदुस्थान के भाग्य में तो एक रूढि ही इष्ट देवता का पूर्ण साम्राज्य है, धर्म या अधर्म, कर्तव्य या अकर्त्तव्य, सब की कसौटी एक बिरादरी के रीति रिवाज हैं, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, और भागवत कथा सुनकर कुछ टके चढ़ाने के साधनमात्र रह गये हैं. वेद एक किसी वस्तु का नाम है, वह क्या है. कहां है किस लिये है ? इस का चिन्तन करना उपेक्ष्य है, हां यदि किसी का भय है तो केवल बिरादरी के हंटर हुक्का देव का, धन्य, भारत सन्तान धन्य ! ऋषियों की सन्तान धन्य ! शर्मन्, वर्मन् और गुप्त धन्य !

देखिये आप आज क्या कर रहे हैं. जिस रक्तबिन्दु के पड़ने से आप के वस्त्र धोने लायक़ और शरीर न्हाने लायक़ हो जाय, वह रक्त जिसका धन्धा करने से एक आदमी चमार शब्द से अछूत माना जाय, उसी रक्त को आप दिन रात अपने मनमाने देवों की (दीनहीन प्राणियों के गले काट कर) बलि चढावें ? जिस मद्य के सेवी नहीं २ धूम्रपान करनेवाले तक के निमित्त महाराज दशरथ के समय में वसति का वास निषिद्ध हो उस के सेवी आज सभाओं और बिरादियों के नेता बनें ? वाह ! स्वच्छता को खूब ही अच्छे वस्त्र पहिना कर सजाया है, मानो इन्द्रपुरी की अप्सरा को भयानक काली, रक्तनेत्र वाली चुडैल ही बना कर प्लेट फार्म पर खडा किया है. जो हिन्दू चमारों को छूने से भ्रष्ट हो जावें वह मुल्लाजी की थूकी हुई राख और पीर की रेवडियों के खाने से तो शुद्ध ही बने रहते हैं और फिर आज कल तो होटेलों की हवा खाने वाले मानो स्वच्छता की होली में आग ही सुलगाते फिरते हैं. जो सफेदपोश है वही होटेल के स्वागत का मान पाता है. चाहे वह सर्वभक्षी, सर्वगामी, मुसलमान, ईसाई, हो या इन से भी पतित हो, वहां का तो डबल कप जूठा कर के ही जाता है. शिखासूत्रधारी होटेल में प्रवेश करते ही चाह की चाह में उस **डबल** को ऐसे ही अपनाते हैं मानो यह सोमरस का पात्र है. बिरादरियों की बडी २ ज्योंनारें थूकी औ मूती गलियों में क्या ही शोभा देती हैं, उसी भ्रष्ट ज़मीन

पर पत्तल डाल कर लड्डू परसना मानो छुआछूत के भूत पर थोडी देर के लिए जूताप्रहार कर भगा देना है. बिरादरियों की ज्योंनार की कढी जिस छाछ से बनती है वह और उस के घड़े तो जितने भ्रष्ट और घृणित होते हैं सो कौन नहीं जानता परन्तु कढी सड़ोपते समय उन घडों में सुधारस के घड़ों की ही भावना कर ली जाती होगी, तब तो वह कढी मुंह में चलती होगी.

जिन गोभक्षकों को हम यवन कहते हैं उन के हाथ के बने या छुए बताशे, रेवडी और गद्दी (नौमुस्लिम) आदि जातियों के पात्रों का दूध तो हड़प कर जायं और गोपूजक हिन्दू चमार आदि को छुआ भी न जाय ? रोटी तो चौके से बाहर न निकले और पैरों से गूंदे हुए आटे की अस्नेहपक्व हिन्दु बिस्कुट चट कर जायं. चमार आदि के हाथ का तो स्पर्श भी पाप है परन्तु यवनों के हाथ का डोज़ रोज़ाना चाहिये, यवनों की चूसी हुई चिलम तो मानो हिन्दू धर्माभिमानी चिलमची का एक इष्ट देव ही है. चमार आदि तो कुए पर भी न चढ सकें पर भारत के गुजरात आदि प्रान्तों में जो सड़कों पर सड़कों की थूकी और मूती मिट्टी से रोज़ बर्तन मांजे जावें और उन बर्तनों में भोजन करना तो नित्यकर्म ही हो. सारांश वही कि जो जातिगंगा बिरादरी की रूढिकौंसिल से मंजूर है वही धर्म. शास्त्र का शौचधर्म अथवा चातुर्वर्ण्यधर्म कोई वस्तु नहीं. अब आधुनिक शुद्धि के कुछ और चित्र देखिये. आज कल रेल की यात्रा

तो देश की बडी भारी संख्या के लिए एक अनिवार्य सी वस्तु हो पडी है और इस में तीसरे दर्जे की ही संख्या हमारे हिन्दू भाइयों के भाग में अधिक पडी है, तीसरे दर्जे की गाडियों में ही अधम से अधम, मलिन से मलिन दशा के लोग भी आश्रय पाते हैं, उस गाड़ी के जिन काष्ठासनों पर विराज कर मिष्टान्नादि उड़ाया जाता है उन्हें रोज भंगी के ब्रश से ही तो शुद्धता प्राप्त होती है, कभी २ उन गाड़ी के डब्बों का स्नान भी उन्हीं भंगियों के हाथों होता है और कभी २ तो यह भंगी धक्के दे कर ट्रेन में न बिठावें तो हम गंगा स्नान को जाने वालों की मुक्ति भी रास्ते में ही होती है. मुसाफ़रखाने का चित्र तो तबियत को खुश ही करे डालता है, जिधर बिस्तरा जमाओ उधर से ही झाड़ू लगती है और उस झाड़ू से उडने वाले परमाणु भी रोज़ २४ घंटे में देश २ के पादरज के नये २ ही इकट्ठे होते हैं. मिठाई आदि की दुकानों का चित्र भी इतना घृणित है कि किसी स्वच्छताप्रिय को तो उलटी लाने की ही तय्यारी कराता है. मलिन से मलिन लोगों को तो वे दुकानें उनकी बेदहली का अभ्यास कराने अथवा ढीठता को पुष्ट कराने के लिए अपने सजे थालों की मिठाई का स्वच्छन्द स्पर्श करा कर उन्हें अपूर्व अवसर का दान कर मानो उदारता का डंका ही बजा रही हैं. अधिक क्या, जिन्हें स्वतः अनुभव है वह समझे हुए हैं कि रेल की यात्रा प्रत्यक्ष एक नरक है. जितना बड़ा और जितने अधिक आंडबर

का स्टेशन होगा उतना ही वह नरक का सा बड़ा दर्जा प्राप्त किए दृष्टिगत होगा. इस यात्रा में नल–कल–जल का पान भी श्रीजगन्नाथ जी के भात का ही काम देता है. सार यह कि हमें यह विचारना चाहिये कि जिस छुआछूत के वास्तविक सिद्धान्त पर हम अमुक को अस्पृश्य मानते हैं और अमुक को स्पृश्य, वह सिद्धान्त हम कहां २ किन २ अंशों में कितना उचित पालेते हैं ?

आजकल विवाहादि मंगल कार्यों में अनेक हिन्दू भ्राता वेश्याओं का नाच जबतक न करा लेवें तब तक कार्यसिद्धि ही नहीं समझते, पर यह किस से छिपा है कि संसार में वेश्याओं से वढ कर अछूत वस्तु कोई नहीं हो सकती. परन्तु वही अछूत जिस समय मजलिस के सजे हुए फ़र्श पर शामियाने के नीचे अपना जाल फैलाती है और उसी फ़र्श पर विराजे हुए अपने भक्तों से हाथ मिलाते हुए दक्षिणा–मुद्रा प्राप्त करती है तब तो वह भक्तराज उस स्पर्श से सुख ही नहीं प्रत्युत अपना भाग्योदय भी समझते ही होंगे. विचारिये तो अब छूत का भूत किधर को भागा ? यह सभी जानते हैं कि थोड़े से राजा, महाराजाओं के यहां केवल गान-व्यापार करने वाली वेश्याओं के सिवा अन्यत्र तो व्यभिचारमूर्त्तियां भ्रष्ट वेश्या ही अपना सिक्का जमाए बैठी हैं. यह उपरोक्त सब बातें दिग्दर्शन मात्र हैं. बुद्धिशाली जनों को संकेत ही पर्याप्त होता है.

सारांश यह कि आज पतित माने हुए लोगों को हम अछूत मानकर

जो उन से निन्दित और न्यायरहित व्यवहार कर रहे हैं उसके मूल में छुआछूत के सिद्धान्त तो अन्धपरम्पर्राण ही नहीं किन्तु नादिरशाही व्यवहार ही हैं. यदि हम उनकी गन्दगी के कारण ही उन्हें अपने से दूर रखते तो ऊपर बताए हुए सभी गन्दे लोगों और गन्दे व्यवहारों से यही घृणा दिखलाते, इस से यह सिद्ध है कि पतित मान हुओं के प्रति हमारा घृणित व्यवहार किसी शास्त्रीय आधार पर नहीं किन्तु एक रिवाज की बात है, जैसे कि कितने ही अन्य रिवाज धर्म को दृष्टि में न रखते हुए भी आज पाले जा रहे हैं, हां वास्तव में छुआछूत का सिद्धान्त कोई उपेक्ष्य बात नहीं, प्रत्युत यह एक शास्त्रीय सिद्धान्त है और जिसका अधिक सम्बन्ध शौचधर्म अथवा आयुर्वेद से है. स्वास्थ्यनियमों से इस का घनिष्ठ संबन्ध है. मासिक ऋतुप्राप्ति और प्रसवकाल में स्त्री, अन्त्येष्टि क्रिया में सम्मिलित सब व्यक्ति, मलोत्सर्ग की दशा में प्रत्येक जन, कुष्ठादिरोग ग्रस्त और जिससे पशुबध हो गया है वे सब लोग उन २ दशाओं में वस्तुतः अस्पृश्य (अछूत) हैं परन्तु इन अवस्थाओं के व्यतीत होने पर यह सभी स्पृश्य होजाते हैं. चमडे के कारखाने के परमाणुओं से जिनका शरीर बारहों मास व्याप्य रहता है वह और सारी आयु गन्दे घृणित मरीज़ों की चीड़फाड़ करने वाले पतितपावन डाक्टर महोदय जब प्रतिदिन स्नानरूप प्रायश्चित्त से शुद्ध होते रहते हैं तो इन चमारों ने ही कौन सा अपराध किया है कि यह स्पृश्य नहीं हो सकते? जब दिनरात

सैकडों दीनहीन बकरी आदि अनेक उपकारशील (मनुष्य के स्नेह की बाट जोहने वाले) पशुओं का जीवहरण कर रक्त की नदियां बहाने वाले कसाई तक स्पृश्य बने रहे तो गोपूजक चमारों ने हिन्दूधर्म के किस अंश की निन्दा करने मात्र का भी पाप किया है जो वे अस्पृश्य हैं ? उत्तर यही कि रिवाज की उपासना ही इस का मूल हेतु है, धर्माधर्म विवेक नहीं. छुआछूत के इस सतर्क अवलोकन से यह विस्पष्ट होगया कि चमार आदि यदि किसी प्रसंग पर अछूत अवस्था को प्राप्त होते हैं तो अन्य पतित अथवा अन्त्यज न माने हुए उच्च हिन्दु लोग भी तो उस दशा को प्राप्त होते रहते हैं, और जब वह स्नानादि के अनन्तर अथवा विना स्नान के भी शुद्ध मान लिए जाते हैं तो चमार आदि को कृषि, वस्त्रवयन और चमडा पकाने का भी कार्य करते हुए उसी रूप में और कम से कम स्नानादिके बाद क्यों अस्पृश्य माना जाय ?

अधर्मचर्यया पूर्वो वर्णःजघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तौ.

पतितों के पूर्वरूप पर एक विद्वान् का लेख.

आज हम जिन्हें अन्त्यज, पतित, अस्पृश्यादि शब्दों से पुकारते हैं, पंजाब आदि प्रदेशों की ओर जिन को मेघ, रहतिया, चमार बोला जाता है और गुजरात, दक्षिण, मद्रास आदि प्रान्तों में जिन्हें

+ अधर्म चर्यासे ब्राह्मणादि वर्ग जाति परिवर्तन में निन्दित जातियों को प्राप्त होते हैं. (आपस्तं वसूत्र)

ढेड़, महार, पारिया कहा जाता है और कुछ प्रान्तों में जिन का स्पर्श करना तक धर्म विरुद्ध माना जाता है. उसी जाति के कुछ लोग कपड़ा बुनने और खेती करने के अतिरिक्त चमड़ा पकाने का भी काम करते हैं. इन के विषय में यदि पर्य्याप्त अन्वेषण किया जाय तो यह नीच कभी सिद्ध नहीं हो सकते. इन की—पँवार, सोलंकी, जादव, चौहान, मकवाणा, चावडा, आदि अटकें इन का प्राचीन काल का क्षत्रिय होना ही सिद्ध करती हैं. उन के विवाह आदि संस्कारों पर होने वाली क्रियाविशेष उन के प्राचीन हिन्दू होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है. यदि आज इस महत्वपूर्ण विषय पर हिन्दू जाति विचार करे तो यह सिद्ध होगा कि यह प्राचीन काल में शुद्धगुण क्षत्रिय अर्थात् हिन्दु जाति के मुख्य अंग थे. कुछ काल से पीडित हो अब तक इन्हें नीच प्रवृत्तिं में रहना पडा है. एक औरभी अनुमान होता है कि जिस समय जैनों का बल बढ़ रहा था तभी से हिन्दुओं ने इन के साथ स्पर्श न करने का वर्त्ताव अरम्भ किया हो. पहिले जापान में भी जातिबहिष्कृत कर अस्पृश्य माना जाता था, यद्यपि जापान ने इस रिवाज को एकदम त्याग दिया परन्तु लकीर का फकीर भारतवर्ष अभी तक इसे पीट रहा है, जिस में गुजरात प्रान्त की तो महिमा ही न्यारी है. बडोदा राज्य के (एक जिले के) कलेक्टर प्रसिद्ध विद्वान् राव वहादुर गोविंदभाई हाथीभाई B. A. L. L. B. सन् १९११ की "बडोदा राज्य की जनसंख्या

का संक्षिप्त वृत्तान्त" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि "गुजरात प्रान्त में जातिभेद बहुत ही देखा जाता है. गुजरात में जितनी छोटी छोटी उपजातियां हैं उतनी हिन्दुस्थान के किसी भाग में भी नहीं. + + + जातियों की संख्या में बड़ी वृद्धि हुई है इतना ही नहीं किन्तु आरम्भ काल की चार जातियों—वर्ण जिन के नाम प्राचीन-ग्रन्थों में देखे जाते हैं उन वर्णों—के मनुष्य भिन्न रोज़गारों में लग जाने से उन का अब पता भी नहीं लग सकता" फिर आगे चल कर इन जातियों के प्राचीन काल के उच्चजातिस्थ होने के विषय में लिखते हैं "लगभग तमाम जातियों के रोज़गार करनेवाले कारीगर वर्ग तथा ढेड़ (चमार) और उन से भी नीच (भंगी) अस्पृश्य वर्गों में कितने ही ऐसे पाये गये हैं जो अपने को राजपूतों में से होने का दावा करते हैं और राजपूतों की सी उन की अटक अथवा उपनाम होते हैं. लड़ाई के समय दबाव से अथवा तंगी के दबाव से राजपूत लोगों ने हलके से हलका काम करना अङ्गीकार किया होगा. इत्यादि प्रकार से उन का प्राचीन काल का क्षत्रिय होना ही सिद्ध होता है" वाचक ! संकोचभाव को दूर कर औदार्य और न्यायबुद्धि से काम लीजिये. अब पतित बनने के प्रत्यक्ष उदाहरण भी लीजिये.

जान्युआरी १७ ईस्वी के द्वितीय सप्ताह में प्रगाग की सार्वजनिक

"अभ्युदय" २७-१-१७

पतित बनाने के ताज़े नमूने और मि. एंड्रूज़ का भाषण

सभा में श्रीयुत एंड्रूज़ का जो हृदयविदारक भाषण पढ़ा गया उसका अनुवाद यह है:

" देवियो और सज्जनो ! मेरा हृदय कहता है कि अब वह समय आ गया है कि मैं मानव-समाज के नाम पर इस असह्य अन्याय के विरुद्ध कुछ कह डालूं।

मैंने अपना पहिला व्याख्यान देने के लिए इलाहाबाद को इस कारण चुना कि इसी प्रांत के गांवों की पवित्र और भोलीभाली स्त्रियों को मैंने स्वयं अपनी आंखों से फ़िजी में ऐसे पतित और लज्जायुक्त अत्याचार सहते देखा है जो किसी स्त्री को असह्य होगा। इनको एक घृणित और नीच प्रथा के कारण वेश्या की भांति विवश होकर रहना पड़ता है। उन स्त्रियों को वहां जाने के पहिले यह कुछ भी मालूम न था कि उनके भाग्य में क्या लिखा है। वे नहीं जानती थीं कि ऐसी घृणित अवस्था में रहने के लिए वे मजबूर की जायंगी। अधिकतर इन सीधीसादी स्त्रियों को धोखा दिया जाता है और अपनी दुर्दशा का हाल उनपर तब खुलता है जबकि उससे निकल भागने का कोई उपाय उन्हें नहीं दिखाई पड़ता।

अब मैं आप लोगों को एक सच्ची घटना सुनाता हूं। एक उच्च जाति और भले घर की हिन्दुस्तानी स्त्री को, जिसे मैंने फ़िजी टापू में देखा, एक दिन संध्या के समय एक तार मिला कि उसका

पति बहुत बीमार हो गया है। वह एकदम स्टेशन की ओर चल पड़ी। रास्ते में लोगों ने उसे बहकाकर कलकत्ते के ' डीपू ' में भेज दिया। वह बेचारी ऐसी डरी हुई थी कि उन सवालों का जवाब न दे सकी जो उससे पूछे जाते थे। परिणाम यह हुआ कि वह जहाज़ पर चढ़ा दी गई। इस जहाज़ पर कुलियों की भीड़ में उसके चरित्र बिगाड़ने का यत्न किया गया। वह अनाथ स्त्री एक बंगाली महाशय की शरण में भागी जो फ़िजी में क्लर्क होकर जा रहे थे। उसने उन बाबू साहब से अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। बंगाली महाशय ने उस स्त्री को एक भलेमानस विवाहित कुली की रक्षा में रखकर भलीभांति सौंप दिया। इसके बाद वह रास्तेभर आपत्तियों से बची रही परन्तु ज्योंही उसकी समुद्रयात्रा समाप्त हुई उसे अपने रक्षकों से अलग होना पड़ा। उस बंगाली युवक को टापू के उत्तर की ओर अपनी नौकरी पर जाना था और वह स्थान इतना दूर था कि वहां जाने के लिए कुछ समुद्रयात्रा भी करनी पड़ती थी इस अवसर में वह स्त्री ' कुलियों के खेती के कारखाने ' में रक्खी गई और वहां भी बारबार उसके चरित्र पर वार हुआ। कितने ही दिन उस अनाथ स्त्री को ये दारुण दुःख सहते बीते। दैवसंयोग से एक दिन वह बंगाली युवक बंदर में यह देखने गया कि सूवा से जहाज़ आया या नहीं। वह समुद्र के किनारे टहल रहा था कि एकाएक कोई स्त्री उसके पैरों पर गिर पड़ी। यह वही

हिन्दुस्तानी युवति थी । वह अपने चरित्र की रक्षा करती हुई भाग ही तो निकली । उस बंगाली युवक ने उसको अपने साथ ले लिया और उसके साथ विवाह कर लिया क्योंकि उसके बचाने का एक वही उपाय था और उसको दासत्व से छुड़ाने के लिए जितने रुपये की आवश्यकता थी अपने पास से दिया । यही एक निकास उसके चरित्र की रक्षा करने का था । यह एक उदार काम था परन्तु स्त्री के फूटे भाग्य की ओर तनिक ध्यान दीजिये । रात दिन वह बेचारी अब तक अपने दुर्भाग्य पर रोती है और उसको अपना देश -- जिसे देखने की आशा उसे अब कुछ भी बाकी न रह गई—भुलाये नहीं भूलता । जो सहस्रों स्त्रियां फ़िजी में भेजी जाती हैं उनमें से एक की यह सच्ची घटना है । ऐसा क्रम रक्खा गया है कि एक औरत तीन मर्दों के साथ भेजी जाय । कुछ स्त्रियां अपने पति के साथ जाती हैं । बाक़ी औरतें मर्दों में इस प्रकार से बाँट दी जाती हैं कि एक औरत को तीन या चार और कभी कभी पांच मर्दों के पास रहना पड़ता है । एक ओवरसियर ने इस रिवाज के क्रम को, जिसे वह अपने इलाक़े में काम में लाते हैं, मुझे इस प्रकार समझाया था । उन्होंने कहा " मैं पहिले उन लोगों को जो स्त्री पुरुष साथ आते हैं अलग कर देता हूं; बाक़ी जो औरतें बचती हैं उनको मैं मर्दों में बाँट देता हूं । और यह भी कह देता हूं कि इतने मनुष्यों को किस स्त्री के पास जाना होगा । अगर मैं ऐसा न करूं तो स्त्रीप्रसंग—सम्बन्धी

लड़ाइयों का अन्त न रहे "। सज्जनो, अगर हम इसे क़ानून-रक्षित व्यभिचार न कहें तो फिर हम इसे किस नाम से पुकारें ?

इस पतित अवस्था का कैसा घोर परिणाम होता है वह शब्दों में नहीं कहा जा सकता। फ़िजी निवासी एक व्यापारी ने इस दशा का हाल न्यूज़ीलेण्ड के एक समाचारपत्र में यों लिखा है:—

Indian Immigration Ordinance 'हिंदुस्तानी कुली भेजे जाने के महकमे के नियमों' के अनुसार प्रत्येक स्त्री को चार मनुष्यों की दासी बनना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि वहां के लोगों का चरित्र कहने सुनने योग्य नहीं रहा। वैवाहिक धर्म और नियमों का तो लोगों को स्वप्न में भी विचार नहीं होता। गृहस्थी का रहन सहन ऐसा घिनौना हो रहा है कि उसका बयान नहीं किया जा सकता। यह तो एक बहुत ही साधारण सी बात हो रही है कि २० या ३० आदमी, औरत, और बच्चे एक ही कमरे में एकही साथ सोते और खाते पीते हैं। व्यभिचार कोई पाप नहीं समझा जाता जिसमें किसीको कुछ लज्जा आवे। इसका परिणाम यह होता है कि छोटे छोटे बच्चे थोड़ी ही अवस्था में लज्जायुक्त बुरे कामों में निपुण हो जाते हैं। फ़ौजदारी की अदालतों की फ़ेहरिस्त देखने से मालूम होता है कि १०० मुलज़िमों में से ९० हिन्दुस्तानी होते हैं। फ़िजी के कोढ़ीखाने में ३०० रोगी हैं और वहां भी हिन्दुस्तानियों की संख्या सब से अधिक देखने में आती है.

अगर न्यूज़ीलैण्ड निवासियों का विचार हिन्दुस्तानी चरित्र के सम्बन्ध में फ़िजी को देखकर भयङ्कर रीति से उलटा पलटा हो तो इस में कोई अचंभे की बात नहीं है, जबकि अधःपतित हिन्दुस्तानियों की इतनी आबादी उदाहरण रूप में उनके दर्वाज़े पर उपस्थित है। हिन्दुस्तान तो सहस्रों मील दूर है। वे स्वभावतः हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में फ़िजी के उदाहरण से अनुमान करते होंगे। यह तो बतलाइये इस में दोष किसका है? क्या बेचारे धोखा दिये गये हुए ग़रीब गांववालों का? कदापि नहीं, बल्कि यह दोष उस नीच प्रथा का है जिसका नामोनिशान इस दुनियां से कभी का उठ जाना चाहिये था।

अब इस बुराई का अंदाज़ा करने के लिए तनिक मुलज़िमों की संख्या का ब्योरा देखिये। फ़िज़ी में भेजे हुए हिन्दुस्तानी कुलियों में औसत से ९५० पीछे १ मनुष्य ने प्रत्येक वर्ष आत्मघात (खुदकुशी) किया है, या यों कहिये कि वहां आत्मघात की संख्या हिंदुस्तान के, या हिन्दुस्तान के दो सब से बड़े कुली भेजने वाले प्रान्तों से ९० गुना अधिक है। अब खून करने की संख्या की ओर देखिये तो वह और भी आश्चर्यजनक है। इन प्रान्तों में ढाई लाख पीछे १ आदमी को प्रत्येक वर्ष इस जुर्म में दंड मिला है। फ़िज़ी में औसत से ३००० पीछे १ आदमी को। यह तनिक ध्यान देने की बात है कि अधिकतर वे लोग जिनका खून किया गया है औरतें हैं और

आत्मघात अधिकतर मनुष्यों ने किया है। क्या ये घटनाएँ और हिसाब आंख खोलने को काफ़ी नहीं हैं। उदाहरण के लिए सन् १९१४ को लीजिये। १५६०३ कुलियों में जो 'फ़िजी' में भर्ती हुए, ११ ने आत्मघात किया, १० को खून करने के लिए दंड दिया गया, ७ आदमियों का खून हुआ, २७ को गहरी चोट पहुंचाने का दंड मिला, १३ को गहरी चोट लगी, २ को मनुष्य-वध करने के लिए सज़ा मिली और ३ का वध किया गया। कुल संख्या उन कुलियों की जिन पर इन जुर्मों का दावा चलाया गया और उन लोगों की जो इन जुर्मों के शिकार हुए सब मिलकर १९१४ में १०० थी इसके मानी यह हुए कि १९१४ में उपनिवेशों के भर्ती कुलियों की आबादी में फी १४० आदमी में १ आदमी आत्मघात, खून, मनुष्य-वध इत्यादि जुर्मों में शामिल था। क्या ऐसी भयानक प्रथा के विषय में कोई भलाई की बात कही जा सकती है। ये भयानक घटनाएँ तो अब अटल हो रही हैं। इसका कारण स्वयं वह प्रथा है जोकि सरकारी क़ानून द्वारा एक स्त्री के लिए तीन मर्द का होना आवश्यक बतलाती है। परन्तु केवल इन्हीं घटनाओं से पूरा पता इस आपत्ति का नहीं चलता। अब तनिक 'पेसिफिक हेरल्ड' नामक पत्र की भी सुनिये:—

"सूवा से अभी एक ऐसी मर्मभेदी घटना का समाचार मिला है जो 'वैदोई' नामक इलाके में हुई है। इस घटना का कारण डाह

है जो ऐसी अवस्था में प्रायः देखने में आती है। इसमें एक औरत पर अत्याचार हुआ है और मनुष्य अत्याचार करनेवाला है। हम समझते हैं कि ज़मीन्दारों और प्रबन्धकर्त्ताओं को यह बात मालूम थी कि इस मामले में एक घोर आपत्ति खड़ी होनेवाली है परन्तु सरकारी क़ानून से उनके हाथ पैर बंधे हुए थे और वे दूसरे कारखानों से आदमी नहीं ले सकते थे नहीं तो यह अधर्म बहुत कुछ रुक सकता था। एक विचित्र रूप इस अवस्था का और भी है। वह यह है कि यदि मुलज़िम कुली को छः महीने से अधिक दंड दिया गया तो उनके मालिकों का नुक़सान होता है क्योंकि कुलियों की नौकरी की मियाद छः महीने से अधिक नहीं बढ़ सकती। जैसा कि क़ानून इस समय है इसका परिणाम यह होता है कि यदि कोई अत्याचार या गुनाह कुलियों में होता है तो उसे उनके मालिक छिपाने की कोशिश करते हैं"।

बहुत से बैरिस्टरों, सरकारी कर्मचारियों, और सौदागरों ने मुझसे और पियरसन साहब से यह कहा कि फ़िजी में हिन्दुस्तानियों ने अपनी भगल ऐसी गंवां दी है कि हिन्दुस्तानी नाम से 'जुर्म करनेवाले' का बोध होता है। १०० में ९० बड़े जुर्म जो टापू में होते हैं हिन्दुस्तानी करते हैं और वहां यह डर हो रहा है कि हिन्दुस्तानियों की हवा कहीं वहां के निवासियों को न लग जाय, हम लोगों ने यह भी देखा कि उपनिवेशों में सबसे बड़े जुआरी

हिन्दुस्तानी ही हैं।

परन्तु सबसे बड़ी बात जो हम लोगों को प्रलय के समान चारों ओर दिखाई देती थी यह थी कि यहां लोग तक भूल गये हैं कि वैवाहिक पवित्रता किस चिड़िया का नाम है। परिणाम इसका यह हुआ है कि जिस ओर देखो व्यभिचार ही व्यभिचार दिखाई देता है। सम्पूर्ण हिन्दुस्तानियों के हृदय में दुराचार की छूत की जड़ बहुत गहरी फैल गई है। किसी ने फ़िजी टापू के कुलियों की अवस्था को 'मुर्ग़ियों के चरित्र' से तुलना की है और यह उपमा ठीक होने के कारण हृदय में तीर सी अब तक चुभ रही है।

यह दुर्दशा केवल यहां से गये हुए कुलियों में ही नहीं पाई जाती वरन् इसकी छूत वहां के स्वतंत्र हिन्दुस्तानियों में भी फैल गई है। वहां के एक स्वतंत्र हिन्दुस्तानी ने मुझसे कहा कि "हमारी स्त्रियां लज्जा को तो बिलकुल धोकर पी गई हैं और अपने पति को पहिनने के कपड़े की तरह बदलती हैं"। जवान लड़कियों की बिक्री बहुत ज़ोर शोर से हो रही है। 'तलाक़' (पति और पत्नी त्याग) तो एक बहुत साधारण बात हो गई है। इस प्रथा के कारण जातियों में कोई भेद नहीं रह गया है। धर्म का कुछ पता नहीं चलता है, पशुओं की भांति स्त्रीप्रसंग ही मुख्य समझा जाता है—और यदि हिन्दुस्तानी धर्म और रीति से कोई विवाह होता है

तो टापू के कानून के अनुसार उसकी गिनती नहीं होती।

निम्नलिखित घटना मुझे एक पादरी साहब ने सुनाई जो उन दोनों भाइयों को जानते थे जिनका इस घटना से सम्बन्ध है। इन पादरी महाशय ने इन भाइयों के दंड को कम कराने का भी यत्न किया था लेकिन उसका फल कुछ न हुआ। एक प्रतिष्ठित हिन्दू घर में ये दो भाई अपनी छोटी बहिन के रक्षक थे। उन्हों-ने अपनी बहिन का विवाह एक योग्य पुरुष के साथ हिन्दू शास्त्र की रीति से किया। हिन्दू रीति में कोई कसर नहीं की गई थी। इसके बाद एक दूसरे मनुष्य ने उनकी बहिन को बहकाकर एक ऐसी रीति (सर्टीफिकेट आफ़ रजिस्ट्रेशन) के अनुसार विवाह कर लिया जो फ़िजी में प्रचलित है। हिन्दू रीति से विवाह वहां कानून के विरुद्ध समझा जात्ता है। वहां के कानून में इसके लिये कोई चारा नहीं। जब उन भाइयों को कोई उपाय न सूझा तो उन्होंने अपनी बहिन को मार डाला और अदालत में हाज़िर हो गये। उन्होंनें मुकदमे के वक्त यह कह दिया कि उन्होंने इस काम को अपने घर की इज़्ज़त और धर्म बचाने के लिये किया था—उनको फाँसी हुई।

सज्जनो! ये सब बातें जिस भयंकर वेष में थीं उसी वेष में मैंने आपके सामने रक्खी हैं। मैंने अपनी ओर से इसमें कुछ घटाया बढ़ाया नहीं है। मैंने इन सब बातों को अपनी आंखों से देखा है।

इनको देखकर मेरा हृदय टूक टूक हो गया है क्योंकि येही बेचारे गरीब आदमी जिनकी यह दुर्दशा हो रही है कुछ वर्ष पहिले सीधे-सादे, हिन्दुस्तान के गावों के रहनेवाले थे और इन्हींको हम अपना समझकर प्यार करते थे। इसमें उनका कोई दोष नहीं, दोष सारा इस प्रथा का है जिसने इन गरीबों को ऐसी भयङ्कर आपत्ति का शिकार बना रक्खा है और जिसके इतनी दिन से जारी रहने का जिम्मा सरकार हिन्द पर है। साफ बात तो यह है कि हम लोग सीधीसादी सी बात यह चाहते हैं कि यह प्रथा एकदम जड से उड़ा दी जाय।

यदि कोई मनुष्य एक ज़हरबाद फोड़े से पीड़ित हो तो क्या हम उसे ढिलाई से पडा रहने देंगे। हम उसमें सुगंधित मरहम या ठंडी ठंडी पुलटिस कभी न लगावेंगे बल्कि किसी योग्य जर्राह को बुलवाकर उसे जड से कटवा डालेंगे।

सज्जनो! यह कुलीप्रथा धर्म और आत्माभिमान के लिये ज़हर-बाद के तुल्य है। यह बहुत भयङ्कर कोढ़ है जो हिन्दुस्तान के जीवन को जड़ से खाये चला जा रहा है। इसका उपाय केवल एक ही है और वह यह कि प्रथा जड़ से एकदम उड़ा दी जाय।"

श्रीमान् माननीय कर्मवीर मोहनदास कर्मचन्द गांधीजी का ऑफरीका संबंधी वृत्तान्त जिन्होंने पढ़ा होगा वह समझ सकते हैं कि मनुष्यों पर क्या २ आपत्तियां नहीं आती. उपरोक्त लेख से आप अनु-

मान कर सकते हैं कि ऐसी आचार हीन दशा में रहते हुए हम क्यों न पतित बनेगें. उनकी दशा देख कौन उन्हें स्पर्श करना चाहेगा जिन लोगों ने उक्त वृत्तान्त पूर्णतया पढ़ा होगा वह जानते हैं कि वहां कुली बनाकर पाखाना तक उठवाया गया है. बतलाइये अब क्या सन्देह हो सकता है कि आज जो भारत में भंगी चमार कहे जाते हैं वह भी इसी प्रकार क्षत्रियादि से पतित नहीं बनाये गये ?

हमारे देशमें भंगी अर्थात् पाखाना उठाने का धंधा करने वाली कोई जाति ही नहीं थी. भारतीय पुराने इतिहास में भंगी शब्द और उस का पर्याय तक नहीं किन्तु ऐसे २ आपत् कालों ने ही यह जातियां बनाई हैं. क्या इन द्वीपों में गये हुए हमारे किसी रिश्तेदार को यह सब कृत्य करना पडा हो तो उसको हम जातिबहिष्कृत करेंगे ? क्या उसकी दशा देख हमारा दिल न पिघलेगा ? अवश्य हमारी प्रेम तरंग उमड़ेगी और हम उसे हृदय से लगायेंगे, बस उसी तरह हमें इन अधिक काल से पतित बनाये हुओं को शीघ्र गले लगा अपनाना चाहिये. यह हमारे पूर्वजों के संबंधी हैं, ग़ैर नहीं.

आज हिन्दु जाति के जीवन और मृत्यु का प्रश्न उपस्थित है. जाति के बहुत थोड़े व्यक्ति जागृत अवस्था में इस विषय पर कभी कभी आन्दोलन करलेते हैं वह धन्य हैं, परन्तु इस विषय पर लगातार मनन और उचित कर्तव्य की आवश्यकता है ज़बरदस्त देवासुर-संग्राम मच रहा है. भूमंडल भर की देवकोटि के अधिपति भारतीय

आज अपनी मिलकियत को भूल चुके हैं. कोटियों देव असुर बन गये और बन रहे हैं. हम राष्ट्रनिर्माण और जातीय साम्राज्य की बहु मूल्य बात भूल गये. यदि आगे यही दशा रही तो किसी दिन " सर्वं वै पूर्ण " स्वाहा " ही समझिये.

पतित कौन हैं कौन नहीं, इस गूढ बात को पीछे विचारेंगे ' हम सारे भूमंडल के अध्यापक थे ' यह शेखी फिर बघारेंगे, ' आर्यावर्त्त सब देशों का शिरोमणि था ' यह भूतवाद मनोविनोद के लिए रख छोडेंगे, सृष्टि के सब देश और मनुष्य मात्र वैदिक धर्मी था यह शुष्क सन्तोष किसी बाग की सैर करते हुए करलेंगे. अभी तो घर में लगी हुई प्रज्वलित अग्नि के उपशम का उपाय चिन्तन ही कर्त्तव्य हो पडा है. सब देशों के लोग आर्य होंगे तब होंगे भूमंडल पर हिन्दु धर्म का झंडा जब फहरायेगा तब, अभी तो आर्यावर्त्त ही की प्रजा हिन्दुत्व को अन्तिम वन्दन कर के दूसरे दूसरे मार्ग पकड़ रही है, नहीं नहीं दूसरा मार्ग पकड कर दूसरे ही दिन इसकी हंसी उड़ाने की चेष्टा कर रही है, और यह दृश्य तथा समय कह रहा है कि अपने रक्त को गति प्रदान करो. गद्दी, तकिया, पलंग और छत्र छोडो. अपने ऐशो आराम में फंसकर लगी हुई अग्नि की तरफ़ से पीठ मत फेरो किन्तु देखो की तुम्हारी आबादी है या बरबादी, प्रकाश है या विनाश ?

जब ' वेद ' ' ज्ञान ' को कहते हैं तो उन शब्दजाल पर

लड़ने वालों की भी मान लो कि पतित अथवा शूद्रों को 'वेद' नहीं पढ़ावेंगे, चाहे उन शूद्रों को अन्य भाषाओं द्वारा वेद का भाव घोलकर पिलाया जा चुका हो अथवा वह स्वयं पी रहे हैं, पर पुराने (नहीं २ बहुत पुराने नहीं किन्तु कुछ शताब्दियों से भ्रम जाल-ग्रस्त) पाण्डित्याभिमानियों को बालक्रीडावत् यही कहते जाओ कि आपके कहने से वेद नहीं पढायेंगे.

बेशक जन्म से द्विज पतितों की इतनी चिन्ता नहीं क्योंकि वह बहिष्कृत नहीं, चिन्ता तो अभी उन की है जो चमार भंगी आदि शब्दों से अलंकृत (या कलङ्कित ?) हो कर अन्य धर्माभासियों की खुराक बन रहे हैं, क्योंकि घर के अन्दर की अव्यवस्थित वस्तु चोरी के समय इतनी नहीं संभाली जाती किन्तु चोरी का मार्ग और गये हुए माल की ही चिन्ता होती है. क्यों कि घर के अंदर रहा हुआ माल फिर भी संभाल कर सुव्यवस्थित किया जा सकता है. इस प्रसंग पर हमें लाहौर के श्रीमान् महात्मा हंसराज जी की वह वक्तृता उद्धृत करते अच्छा लगता है जो उन्होंने मार्च ०१६ ई० में इलाहाबाद में दी थी. महात्मा जी के शब्द अक्षरशः पढने योग्य हैं और वह उनकी लगन को स्पष्ट कर रहे हैं.

महात्मा हंसराज जी की मार्मिक वक्तृता. §

"तातीलों के दिनों में एक बार मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट मेरे देखने में आई थी। अर्थशास्त्र का यह एक नियम है कि यदि किसी

§ अभ्युदय ११-३-१७

देश के निवासियों को खाने पीने को काफ़ी मिलता जाय और समाज में कोई खराबियां न हों तो २५ साल में उस देश की आबादी दुगनी हो जाती है। परन्तु वह एक ख्याली मामला है। असली तौर से ठीक ऐसा नहीं होता, उदाहरणतः, इङ्गलेंड में ४० साल में आबादी डेवढ़ी हुई है। अपने देश की आबादी का विषय सब के लिये महत्वपूर्ण है। मैं यहां हिन्दुजनसंख्या के सम्बन्ध में विचार करने को खड़ा हुआ हूं। जैसे ईसाई का फर्ज़ है कि वह ईसाइयों की बेहतरी के लिये विचार करे और मुसलमान अपने सजातीयों के लिए, उसी तरह हिन्दुओं के सम्बन्ध में विचार करना हमारा कर्तव्य हैं। हाँ तो, रिपोर्ट से विदित हुआ कि पिछले १० साल के भीतर ईसाई सब से अधिक बढ़े अर्थात् ३५ फी सदी; मुसलमान ८ फी सदी बढ़े। घटे तो अकेले हिन्दू घटे जिनकी कुल संख्या में ५ लाख की कमी हो गई। प्रश्न यह है कि हिन्दू जाति के जीवित रहने की आवश्यकता है या नहीं? हिन्दू जाति, हिन्दू धर्म एक अति प्राचीन सभ्यता को प्रकट करता है। उसका हक़ है कि वह संसार में जीता जागता रहे। इतिहास देखकर आप लोग विचारिये कि जो सभ्यता राम और युधिष्ठिर सरीखे पुरुषरत्नों को पैदा कर सकती है वह रहने योग्य है या नहीं"।

आगे आपने राम के वनवास का दृष्टान्त दिया और उस समय का चित्र खींचा जब कि उदार भरत हाथ जोड़े श्रीराम चन्द्र जी से

कह रहे थे कि मुझे राज्य न चाहिये। कितना बड़ा स्वार्थत्याग था। "सारे हिन्दुस्तान का राज्य ऐसी सरलता से भरत जी को मिल रहा था; परन्तु जैसे लड़के फुटबाल खेलते हैं वैसे ही भरतजी कुल राज्य—वैभव को रामचन्द्र जी की ओर रामचन्द्र जी भरत जी की ओर ठेल रहे थे! क्या कोई और कौम, कोई अन्य सभ्यता ऐसा नज़ारा दिखला सकती है? यह आर्य सभ्यता ही का फल था। हमारे यहां की स्त्रियों पर दृष्टि डालिये। सुमित्रा ने हनुमान् जी के द्वारा लक्ष्मण को उस विपत्ति के समय में भी यही कह भेजा कि तुम धन्य हो कि तुमने अपने भाई की सेवा में अपने प्राण लगा दिये। कौशल्या का सम्वाद राम को यह था कि बेटा, तुम भाई को लेकर गये हो। लौटना तो उसके साथ लौटना, नहीं मुंह न दिखाना"।

जो धर्म और सभ्यता ऐसे रत्न, ऐसे चरित्रवान् व्यक्तियों को पैदा कर सकती है उसमें कोई बड़ी महत्ता अवश्य है। इसके सिवा हम (Self-Preservation) आत्म-रक्षा सिद्धान्त के आधार पर भी हिन्दुओं में बने रहने का दावा कर सकते हैं। बेशक हिन्दुओं की तादाद घटने से जैसी चोट मेरे हृदय में लगी है वैसी ही आप लोगों के हृदयों को भी लगी होगी। परन्तु आज हमें इसके कारणों पर विचार करना है। हमारी संख्या घटने का पहिला कारण यह है कि हिन्दू जाति ने एक सच्चे उसूल (सिद्धान्त) का त्याग कर दिया है।

यजुर्वेद में कहा है कि " यथेमांवाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः " जिसका अर्थ है कि ईश्वर कहते हैं कि " जिस तरह मैं अपनी वाणी सबके लिए देता हूं उसी तरह तुम भी मेरी वाणी सब तक पहुंचाओ । " एक और मंत्र है जिसका आशय है कि " ऐ इन्द्र, आओ सब को आर्य बनावें " इन वाक्यों की तह में यह बात है कि वैदिक धर्म उन सबके लिए है जो उससे लाभ उठाना चाहें, प्राचीन आर्यों का स्वभाव था कि जिन लोगों में वे वास करते थे उनमें अपना धर्म भी फैलाते थे। हनुमान् का संस्कृत जानना और दक्षिण में शवदाह आदिक संस्कारों के प्रचलित होने के विषय को हमें ध्यान के साथ पढ़ना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि जो जातियाँ हमारे अंदर थीं वे धर्म से महरूम (वंचित) नहीं रक्खी जाती थीं। आजकल की दुर्दशा देखिये कि हम अपने निम्नजाति के भाईयों का कैसा अपमान कर रहे हैं। शूद्र चरण तुल्य माने जाते हैं। परन्तु मैं पूछता हूं कि सोते समय जब आप चादर ओढ़ते हैं तो क्या पैरों को नंगा रखते हैं? पैर मैले हो जाने पर क्या उन्हें नहीं धोते? क्या कोई कह सकता है कि हमारा यदि पैर काट दिया जाय तो सिर खड़ा रह सकता है? जो समाज अपने सब अंगों की बराबर रक्षा नहीं करता वह भारी हानि उठाता है। हम हिन्दुओं पर यह धब्बा है कि हमने अपने निम्न भाइयों के साथ अच्छा सलूक नहीं किया।

इसके बाद अपने छान्दोग्य उपनिषद् का एक दृष्टान्त दिया जिसमें सत्यकाम नामक लड़का गोतम जी के पास पढ़ने गया था जिन्होंने उस का गोत्र पूछा। वह लौटकर अपनी माता के पास गया जिसने कहा कि "मुझे स्वयं स्मरण नहीं कि तेरा पिता कौन था। तू जाकर गौतम जी से कह दे कि मेरी माता का नाम जवाला है।" उसने वैसा ही जाकर कह दिया। गौतम जी ने उसे स्वीकार कर लिया और कहा कि "तू ने सच्ची बात कही इससे मैं सन्तुष्ट हूं और समझता हूं कि तू ब्राह्मण है।" पीछे सत्यकाम ऋषियों की नसल क़ायम करनेवाला हो गया। लेकिन हमारी बदसलूकी की कथा बड़ी मार्मिक है। शंकर ने अपने शारीरिक भाष्य में उद्धृत किया है कि यदि शूद्र के कान में वेद का शब्द पड़ जाय तो उसमें जलता हुआ सीसा भर देना चाहिये। एक जगह लिखा गया है कि शूद्र 'चलता फिरता स्मशान है।' जैसे स्मशान में वेद की आवाज़ नहीं होती वैसे ही शूद्र वेद सुनने के अयोग्य है। यमस्मृति में लिखा है कि उस शूद्र को क़त्ल कर देना चाहिये जो वेदमंत्र पढ़े वा जो हवन जप में लगा हो। पेशवाओं के समय में एक शूद्र वास्तव में क़त्ल कर दिया गया था क्योंकि उसके कान में वेद की आवाज़ पहुंच गई थी। हमने अपने शूद्रों को धर्म देने से इनकार किया इसीसे हमारे समाज में कमज़ोरी शुरू होगई। काश्मीर को फ़तह करने वाले तिब्बतनिवासी एक बादशाह ने कुछ

पंडितों को इसलिए बुलवाया था कि वह हिन्दू धर्म को ग्रहण कर ले। बादशाह बौद्ध भावों को लिये हुए मूर्तिपूजक था। परन्तु पंडितों ने उसे अपने धर्म में लेने से इनकार किया। इसपर बादशाह ने सूचित किया कि कल सवेरे जो मनुष्य मुझे पहिले मिलेगा उसी के धर्म में शामिल हो जाऊँगा। बुलबुलशाह नामक फकीर उसे मिला जिसका मज़ार काश्मीर में अब तक बना है। बादशाह अपने दलबल सहित मुसलमान हो गया। इसी तरह वक्ता ने सिकन्दर सानी का उदाहरण दिया जो एक ब्राह्मण से गीता सुना करता था और जिसके लड़के ने 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः' वाले श्लोक का ग़लत अर्थ बतलाकर मामला गड़बड़ा दिया था।

आगे आपने काश्मीर के प्रसिद्ध मार्तंड मंदिर का ज़िक्र किया जिसके उपर एक कृत्रिम सूर्य बना हुआ था परन्तु सूर्योदय होने पर असली नकली में शक हो जाता है। और बतलाया कि सिकन्दर ने यह कहकर कि " २ सूरज काफिरों ने बनाये हैं " मन्दिर को गिरवा दिया। उसी सिकन्दर ने पीछे कितने ही ब्राह्मणों को बोरियों में बंधवाकर झेलम में डलवा दिया। काश्मीर की दशा बतलाते हुए कहा कि वहां ९ लाख की आबादी में से अब केवल ५० हज़ार हिन्दू रह गये हैं, क्योंकि हमने अपना धर्म दूसरों को देने से इनकार किया

आपने 'बिशप ऑफ़ मद्रास' की उस रिपोर्ट का भी उल्लेख किया जिसमें उन्हों ने लिखा था कि "**हमने १० साल के भीतर ३ लाख अन्त्यजों को ईसाई बना लिया है**" **कारण यह है कि उनके साथ हिन्दुओं ने बदसलूकी की।** (शोक !!!)

दक्षिण में घृणा का भाव इतना प्रबल है कि ६० फुट से अन्दर किसी शूद्र की छाया पड़ जाने से लोग अपने को अपवित्र मान लेते हैं और अपने कपड़े धोते हैं। अब बतलाइये किस तरह से समाज की उन्नति हो? हिन्दुओं ने 'मिलाओ मिलाओ' का पाठ नहीं पढ़ा। उन्होंने '*तफ़रीक करो तफ़रीक करो' ही का सबक सीखा है। हमारी बिरादरियों के जलसे लोगों को ख़ारिज करने ही के लिए सदा होते हैं। हमें अब सावधान हो जाना चाहिये नहीं तो छोटी जातियाँ हमारे हाथ से निकल जायँगी। गेट सरकुलर पर इतना होहल्ला मचा था लेकिन कितने हिन्दु हैं जिन्होंने उसके बाद भी अछूत जातियों पर अपनी सख़्ती कम की है। रामचन्द्र अन्त्यज को हम अपने फ़र्श से अलग रखते हैं, परन्तु ज्योंही वह मोहम्मदबख़्श बनकर हमारे फ़र्श पर आकर बैठता है तो हमारा धर्म नहीं जाता। और यदि वही पादरी के पास जाकर ईसाई हो जाता है और फिर किसी दुकान पर आता है तब लालाजी यह कहकर कि 'साहब आये' कुर्सी लाकर रखते

* निकालो निकालो.

हैं। इससे यह प्रकट होता है कि उस मनुष्य से हमें कोई नफ़रत नहीं वरन् उसके रामचन्द्र या कृष्णप्रसाद बने रहने से नफ़रत है। (शोक) हिन्दू तो बेचारे खरबूजे की तरह हैं जो अपने पर छुरी के पड़ने पर अथवा छुरा पर स्वयं गिरने पर भी दोनों तरह से कट जाता है। हम हिन्दू सिकुड़ना जानते हैं फैलना नहीं। हमारा धर्म तागे का धर्म हो रहा है। जम्बू राज्य के पहाड़ों पर वशिट नामक जाति के लोग रहते हैं जिन्हें हिन्दू कुएँ पर भी चढ़ने नहीं देते। मीरपुर आर्यसमाज ने उनमें से कुछ लोगों को शुद्ध किया था जिसपर राजपूतों ने घोर विरोध किया। एक पुरुष का, जिसे मैंने स्वयं देखा है, राजपूतों ने यह कह कर जनेऊ तोड़ दिया कि " तुमतो अब हमारे बराबर बनना चाहते हो " इतना ही नहीं, एक लोहे की दात्री गरम करके उतने बदन को भी जला दिया जिसमें जनेऊ रहता है। पीछे जम्बू हाईकोर्ट ने राजपूतों को सज़ा दी; परन्तु उस व्यक्ति ने अपने प्राण से प्यारे यज्ञोपवीत को अपने बदन से अलग नहीं किया†। सन्तोष की बात है कि इस इलाके में आर्य समाज १०००० से ज्यादा अछूतों को शुद्ध कर चुका है। इन बुराइयों को दूर किये बिना समाज के कमज़ोर अंग मज़बूत नहीं हो सकते." वक्तृता जितने मार्के की है उतनी ही कर्त्तव्य रूप में लाने योग्य है.

---

† बेशक सिपाही अपनी सिपाहियाना पोशाक बिना किसी श्रेणि का नहीं.

श्रीयुत रमेशचंद्र दत्त सी. आई. ई. के विचार.

ऑक्टोबर १९०९ में बड़ोदे की महती महाराष्ट्र परिषद् में श्रीयुत दत्त महोदय ने हिन्दुधर्म की चिन्ता-जनक स्थिति दर्शाते हुए पतितोद्धार पर इस प्रकार शब्द कहे " हम हिन्दु लोग अन्त्यज वर्ग को तिरस्कार से दूर रखते हैं सो हमारे सदा के हित का हानि-कर्त्ता है. हिन्दु धर्म इतना पुष्ट होते हुए महात्मा बुद्ध का विजय हुआ इस का मुख्य कारण हम से तिरस्कृत हो दूर हुए लोगों के प्रति उन का प्रेमभाव था. फिर श्री शंकराचार्य का विजय हुआ सो भी बुद्ध धर्म के कितने ही साधनों का आधार लेकर ही बुद्धधर्म पर विजय प्राप्त किया था. मूर्तिपूजा, यात्रा आदि बुद्ध धर्म से प्रथम हमारे यहां नहीं थे. उसे ग्रहण कर नीच वर्गों के प्रति स्नेहभाव आरम्भ करने से ही हमारी जीत हुई है. परन्तु फिर उसे हम भूल गये हैं. और अन्त्यजों के साथ अनुचित व्यवहार करते हैं. इससे बहुत कुछ सहना पड़ा हैं. और अब भी जो आंखें न खोलेंगे तो ' क्या२ सहना पडेगा ' यह नहीं कहा जा सकता. पूर्व बंगाल के ३० लाख मनुष्यों में १८ लाख मुसल्मान है, और वह मुसल्मान और कोई नहीं परन्तु हमसे हलके माने गये और तिरस्कृत हुए और इस से धर्म छोडने वाले हिन्दू हैं. मद्रास में प्रति वर्ष हज़ारों हिन्दू धर्म छोड़ते जा रहे हैं और अपना राष्ट्रीय (प्रजाकीय) बल घटता जा रहा है और वह हमने अपने हाथों किया है. "

पतित जातियों के विषय में बड़ोदा नरेश का एक महत्वपूर्ण लेख.

अब हम श्रीमान् बडोदा नरेश सयाजीराव महाराज के वह उच्च, युक्ति–संगत विचार आप के सम्मुख रखते हैं जो कि महाराज ने अपने The Depressed Classes (पतित जातियां)* शीर्शक में एक बड़ा ही महत्वपूर्ण और सारगर्भित सविस्तर लेख लिख कर दर्शाये हैं.

" जिन जातियों के विषय में हमें कुछ कहना है उन्हें ' गिरी हुई ' या ' नीच ' नाम से पुकारना ठीक मालूम नहीं होता किन्तु इस से भी अच्छा उन जातियों का द्योतकशब्द ' अस्पृश्य ' हो सकता है जिस का अर्थ भिन्न २ समयों में भारत के प्रान्त, जाति, और सम्प्रदायों के अनुसार बदलता रहा है. उन को Depressed (गिरा हुआ) कहना एक लम्बेचौड़े गोलमोल शब्द का प्रयोग करना है क्योंकि जस्टिस् चन्दावारकर ने कहा है कि भारतवर्ष के सभी जन यहां तक कि ब्राह्मण भी ' गिरी हुई ' अवस्था में हैं, अतः उन के विचार में उन जातियों के लिये ' अस्पृश्य ' शब्द योग्य है. और यह लेख इस दृढ आशा पर लिखा गया है कि देश के सच्चे हितैषियों को मालूम हो कि छूतछात का सिद्धान्त हम को व्यक्ति और समष्टि रूप से कितना हानिकारक है. हम में से बहुत कम इस बात को जानते होंगे कि–म० सिन्दे के कथनानुसार भारत

* देखो अंग्रेज़ी मासिकपत्र The Indian Review डिसेंबर १९०९.

में इन अस्पृश्यों की संख्या छः करोड अर्थात् भारत की सम्पूर्ण जनसंख्या का एक पञ्चमांश है.

इस जाति के उद्धार का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है कि जिस का प्रभाव उस जाति तक ही परिमित नहीं किन्तु समस्त भारतीय समाज पर भी पडता है. इस प्रश्न के निराकरण पर भारत का पुनरुद्धार निर्भर है. राजनैतिक क्षेत्र में व्यक्तिगत आत्मस्वातंत्र्य और जातीय-समानता का झगड़ा आरम्भ हो गया है. जो नियम हम को व्यक्ति-रूप से राजनैतिक न्याय प्राप्त करने के लिये प्रेरित करते हैं वही सिद्धान्त हमें समाज में न्यायपूर्वक वर्त्तने के लिये प्रेरित करते हैं. हमारे देश की उच्च जातियों ने अब तक अपने बहुत से देशभाइयों के साथ अन्याययुक्त और निष्ठुरता का व्यवहार किया, परन्तु अब उन को उस समानता तक उठाने के लिये—जो कि उनका ईश्वरीय स्वत्व है हम प्रयत्न करते जा रहे हैं, उन उच्च मनोभावों ने—जो विदेशी शिक्षण तथा पाश्चात्य संसर्ग से हमने प्राप्त किये हैं—हमारी आंखें खोल दी हैं, जिस से हम अपनी मानसिक संकीर्णता से उत्पन्न हुई भूलों को जान गये हैं जो कि अब तक अज्ञात जैसी थीं. इन जातियों के उठाने में हार्दिक प्रयत्न करने से ही हम अभीष्ट जातीय कार्यों के सिद्ध करने योग्य माने जा सकते हैं.

पारिया * से ले कर ब्राह्मण तक अनेक जातियों में ऊंच नीच

* मद्रास प्रान्त की पतित जातिविशेष चमार आदि.

मानने की प्रथा सर्वथा अन्यायपूर्ण है. इस प्रथा के अनुसार सब मनुष्य जातियां जो कि ईश्वरीय नियम के विरुद्ध (गुण कर्म स्वभावानुसार न मान कर) केवल जन्मानुसार ऊंचनीच विभागों में कल्पित कर ली गई हैं उन जातियों के इस बात के निरन्तर झगड़े से—कि समाज में कौन सी जाति उच्च है—आजकल एकदूसरे के प्रति वैमनस्य उत्पन्न हो गया है. मनुष्य की इस इच्छा ने—कि अपनी ही जाति की सहायता करनी चाहिये—स्वार्थपरता को उत्पन्न कर दिया है तथा परस्पर ईर्ष्याग्नि और अविश्वास का बीज बो दिया है, दूसरे शब्दों में यों कहिये कि यहां ऐक्य का अभाव है; जिस का होना कि हमें राष्ट्र में गिने जाने के लिये अत्यावश्यक है, इस लिये हम को उन कृत्रिम बातों को छोड़ देना चाहिये. जो हमें ऐक्य के झंडे के नीचे लाने में विघ्नकर्त्री हैं. उस का सब से पहिला यही उपाय है कि हम अस्पृश्य जातियों की कठिनाइओं को दूर करें तथा जाति के विभागों को एक रूप में करें.

अब हम को विचारना यह है कि पतित जातियों की स्थिति को हम किस प्रकार उन्नत कर सकते हैं. पहले हम को यह देखना चाहिये कि वह कौन सी बाधायें हैं जो उन के रास्ते में आड़े आती हैं. यह प्रत्यक्ष है कि उन में शिक्षण का अभाव है परन्तु यह अभाव उन के पतन का कारण नहीं. क्योंकि भारतवर्ष की अन्य बहुत सी

जातियां भी उन्हीं के समान प्रायः शिक्षणविहीन हैं. यह पतित लोग उन उपरोक्त जातियों के समान साधारण पाठशालाओं में भी नहीं जा सकते क्योंकि लोगों के विचार में उन से छूना मानो भ्रष्ट होना है और लोकव्यवहार तथा धर्म के विरुद्ध आचरण (पाप) करना है. जीवन निर्वाह के साधन व्यवसाय को भी यह जातियां बहुत ही कम कर सकती हैं. स्पर्श से भ्रष्ट होने के कल्पित विचार का भूत उन के रास्ते में आ खडा होता है. पद २ पर आने वाली दूसरी कठिनाइयों के अतिरिक्त–जितना कि अन्य जातियों को सामना नही पड़ता सब से बड़ी कठिनाई यह है कि यह जातियां स्पर्श करने योग्य नहीं समझी जातीं. इस जाति की वर्तमान दशा सुधारने के लिये हमें छूतछात के विचार को ताक़ में रख देना चाहिये. अन्य शेष उपाय इन के सुधारने के वही हैं जो किसी भी पतित जाति के उठाने में प्रयुक्त किये जा सकते हैं.

अब इस बात का विचार करना है कि यह छूत छात क्या है? इस के उत्तर में हम कहेंगे कि भारतवर्ष का यह एक असाधारण विचार है जिसका अस्तित्व अन्य किसी देश में नहीं पाया जाता. शायद जापान ही दूसरा देश है जो कि पहिले इस सिद्धान्त को मानता था परन्तु वह तो इस को तभी त्याग चुका जब उस ने अपने पुराने अन्धविश्वास तथा राष्ट्रनिर्माण में आड़े आने वाली दूसरी बातों का एक दम त्याग किया था. " इन जातियों का स्पर्श

भ्रष्ट कर देता हैं, " इस की पुष्टि में निम्नलिखित दो युक्तियां प्रायः दी जाती हैं.

छूतछात के विषय में साधारण मनुष्य तो गवेषण करने का परिश्रम ही नहीं उठाता प्रत्युत वह यह कहता है. कि " यह तो रिवाज ही चला आता है" अथवा वह इस को धर्मोक्त ही माने बैठा है. वह इन को छूना महापाप समझता है, जिस का प्रायश्चित्त उस की समझ में स्नान करने, क्षौर कराने, अथवा एक ब्राह्मण को दान देने से हो जाता है. सौभाग्यवश उनके इस स्वकल्पित ईश्वरीय नियम का भंग अधिकता से होता है जितना कि आचरण नहीं, जैसे कि शरीर पर पानी छिड़कने अथवा एक मुसल्मान को छूने से इस पाप का प्रायश्चित्त हो सकता है. वह इतना ही कर के अपने को पवित्र हुआ मान लेता है और समझ लेता है कि ' मेरे बाप दादे भी ऐसे ही किया करते थे और अनगिनत रीति रिवाज जो धर्म के अंग हैं ऐसा ही बताते हैं ' आप उस के साथ शास्त्रार्थ नहीं कर सकते क्योंकि उस का धर्म्म युक्तिशून्य है, अर्थात् तर्कप्रयोग को वह सहन नहीं कर सकता. उस से कुछ अधिक शिक्षित पुरुष एक विचार रहित गोलमाल युक्ति इस रिवाज के उपयुक्त होने में पेश करते हैं. उन का कहना है कि मनुष्य का शरीर एक इस प्रकार के अदृश्य परमाणुओं से परिवेष्टित है कि जिन के आधार पर उस के अच्छे बुरे स्वभाव और आचरण अवलम्बित हैं. जब दिव्यगुण

युक्त एक मनुष्य के परमाणुओं से वह मेलसेल होते हैं तब उसे भी दूषित कर उस के आचरण आदि को नष्ट कर देते हैं. मैं नहीं कह सकता कि यह सिद्धान्त कहां तक ठीक है तौ भी मुझे इस में अत्युक्ति प्रतीत होती है. इस सिद्धान्त के अनुसार किसी भी दुराचारी का स्पर्श न करना चाहिये, चाहे वह ब्राह्मण हो या अन्य कोई. परन्तु ऐसा नहीं होता, इस के विरुद्ध तमाम गिरी हुई जातियों को ही इस युक्ति के अनुसार छूने से इन्कार करना इस बात को बतलाता है कि इन जातियों का प्रत्येक व्यक्ति अपने चारों ओर बुरे परमाणुओं के छाये होने से नीच है. परन्तु यह बात भी अनुभव के विरुद्ध मालूम होती है; क्योंकि इन पतित जातियों में से कुछ ऐसे मनुष्य उत्पन्न हो गये हैं कि जिन का मान समस्त भारत-वर्ष में हुआ है. यहां तक कि ब्राह्मण आदि अन्य उच्च जातियों ने भी उन को मान की दृष्टि से देखा है. **रोहीदास** एक मोची, **चोखा मेला** एक महार * **सेन** एक नाई. यह व्यक्ति उपरोक्त बात के सुप्र-सिद्ध उदाहरण हैं. फिर अधिक शिक्षित पुरुष कहते हैं कि यह नीच जातिआं गन्दी रहती हैं इन के आचरण बुरे हैं तथा यह लोग अप-वित्र भोजन करते हैं इसी कारण इन को अस्पृश्य मानना न्याय-युक्त है. इस का अभिप्राय यह होता है कि गन्दे रहने वाली सभी जातियों के मनुष्यों से ही अलग रहना रहना चाहिये. और ' हम

* दक्षिणका चमार

को वास्तविक अच्छे बुरे का भेद मानना चाहिये. 'हम पुराने आर्यों की सन्तान हैं' इस बात का अभिमान रखने वाले यदि इस सिद्धान्त के मानने को तय्यार नहीं होंगे. तो फिर कौन इस बात की निश्चित रूप से व्यवस्था दे सकता है कि अमुक स्वभाव अच्छे होते हैं और अमुक बुरे ? क्या हिन्दुओं का भोजन समय २ पर नहीं बदलता रहा ? छूतछात का प्रायश्चित्त कई विभागों में विभक्त है. इन भिन्न २ जातियों को छूने से भिन्न भिन्न प्रकार का प्रायश्चित्त किया जाता है. मेरी सम्मति में छूतछात और प्रायश्चित्त के इन कल्पित कानूनों के विषय में चर्चा करना व्यर्थ है क्योंकि इस का परिणाम मनुष्य जाति के लिये शुभ नहीं किन्तु सामाजिक उन्नति में बाधक है, क्योंकि इन प्रायश्चित्तों में से कोई भी ऐसा नहीं जिस में पुरोहित को आर्थिक लाभ न हो. अतः स्पष्ट सिद्ध है कि ऐसे प्रायश्चित्त निस्सार हैं.

(द्वितीयांश.)

इस रीति रिवाज का कारण जातीय पक्षपात हो सकता है. इस की पुष्टि में हमें इतिहास बतलाता है कि जब शासक और प्रजा दो जातियों का परस्पर सम्बन्ध होता है तब यदि धर्मभेद अथवा कोई दूसरी रुकावट उन के मार्ग में न आवे तो वे इस प्रकार मिल जाती हैं मानो एक ही हों. यदि एक जाति उन्नत हो और दूसरी अवनत तो उन्नत जाति अपने को अवनत में नहीं मिलने देती. स्पेन वाले

मेक्सिको और ब्रेज़िल को गये. वहां जा कर उन देशों की शिक्षित जाति में मिल गये, परन्तु अंग्रेज़ और फरासीसियों ने अपने आप को उत्तरीय जाङ्गल जातियों से विशेष पृथक् रक्खा. संयुक्त राज्य के अमेरिकन और न्यग्रो लोग आपस में नहीं मिल सके क्योंकि शासक जातियों के दो एक विवाह न्यग्रो * जाति की स्त्रियों से जो हुए उन से अमेरिका निवासियों के समाज में इतनी खलबली मच गई कि जिस से उस न्यग्रो जाति को इन के साथ मिलने में अनेक बाधाएं आ उपस्थित हुई. अमेरिका निवासियों का अन्य जातियों से विवाह करना धार्मिक प्रश्न न था किन्तु उन की इच्छा पर आधार रखता था. कभी २ आर्थिक दशा की विषमता उन्हें एक नहीं होने देती. जैसेः—आस्ट्रेलिया वाले दक्षिण ऑफ़रीका वालों से इसी कारण न मिल सके. उपरोक्त इतिहास यह बतलाता है कि एक जाति दूसरी जाति से जातीय शत्रुता, आर्थिक असमानता, आपत्काल अथवा गमनागमन में सुभीता न होने से अलग ही रही.

भारतवर्ष के अतिरिक्त शिक्षित संसार में और दूसरा देश न निकलेगा जहां धर्म की शक्ति एक मनुष्य को उस के सम्बन्धियों से पृथक् करने में प्रयुक्त की गई हो.

पवित्रता एक विलक्षण हिन्दुविचार है. मानसिक और शारीरिक पवित्रता अपने स्वाभाविक स्वरूप से भिन्न ही प्रकार की हो रही है.

* अमेरिका के कृष्णकाय पतित.

जितनी जिस में अधिक पवित्रता है उतना ही हम उस को परमात्मा के अधिक निकट मानते हैं. वह पवित्रता थोड़ी पवित्र अथवा अपवित्र वस्तुओं के स्पर्श करने से नष्ट हो जाती है और स्नान अथवा निरर्थक प्रायश्चित्तविधि करने से प्राप्त हो जाती है. मृतकपशुचर्म और इसी प्रकार कुछ पशुओं के स्पर्श से नष्ट हो जाती है. इतने पर ही समाप्ति नहीं होती किन्तु बढ़ते बढ़ते इस मर्यादा को पहुंचती है कि पतित, अपने से जाति में नीच, तथा अपने कुटुम्ब की अमुण्डित * विधवा का भी स्पर्श हो जाना मानो इस पवित्रता को नष्ट करना है. यहां तक कि कुछ वैष्णव तो स्वयं अपनी स्त्री के हाथ का बनाया हुआ भोजन करने से अपवित्र हो जाते हैं. भला ! इस से बढ़कर हास्य की और क्या बात हो सकती है. इस का कारण कदाचित् व्यर्थ कुरीतियों के प्रति अनुचित अनुराग ही है. जिस को बुद्ध जैसे सुधारक भी दूर न कर सके. बिल्ली के स्पर्श से मनुष्य कम भ्रष्ट होता है, कुत्ते के छूने से कुछ अधिक, परन्तु पारिया के स्पर्श से तो इतना भ्रष्ट हो जाता है जितना और किसी के स्पर्श से नहीं होता. मनुष्य को पशुओं से भी नीच बनाना ही इस काल्पनिक पवित्रता का अन्तिम उद्देश है. पतित जातियों के मनुष्य इस कुप्रथा के कारण पद दलित हो रहे हैं. वह इस के आदी हो चुके हैं. अतः वह नहीं समझ सकते कि हमारे साथ कितनी असमानता से बर्त्ताव किया जा रहा है.

* दाक्षिणात्यों में विधवाओं के सिर मुड़े रहने की प्रणाली है.

परन्तु अब हम इस अन्याययुक्त व्यवहार को समझ रहे हैं, अतःअब हमें इस को त्याग कर अपने करोड़ों भाइयों के साथ न्याययुक्त वर्त्ताव करना चाहिये.

रामदास कहते हैं:—

" ऐसें कैसे रे सोवळें। शिवतां होतसे ओवळें ॥
स्नान संध्या टीळे माळा। पोटी क्रोधाचा उमाळा ॥
नित्य दंडितोसी देह। परि फिटेना संदेह ॥
बाह्य केलीं झळपळ। देह बुद्धिचा विटाळ ॥
दास ह्मणे दृढ भाव। तयावीण सर्व वाव ॥ "

(रामदास प्रास्ताविक पंचक)

(अहा ! यह कैसी पवित्रता जो छूने से अपवित्र हो जाय. स्नान, ध्यान, तिलक, तथा माला का धारण आदि करना तो तू दिखावे के लिये करता है, पर तेरे हृदय में ईर्ष्या की अग्नि भबक रही है. तु सदैव तप करता है पर तू शंका से रहित नहीं होता, तू अपने को सिद्ध बताता है परन्तु विचार शक्ति तुझ को छू तक नहीं गई. दृढ विश्वास विना सब व्यर्थ है.)

बाह्य नहीं किन्तु आभ्यन्तरीय पवित्रता हमारा मुख्य लक्ष्य होना चाहिये; नहीं तो विश्वास और सहानुभूति के स्थान में द्वेषभाव और अविश्वास का राज्य होगा. मेल और ऐक्य के स्थान को अनैक्य और विरोध घेर लेंगे. जो मनुष्य की उन शक्तियों को उन्नत नहीं होने देते; जिन के कारण कि वह उन्नति के शिखर पर पहुंचता है. इन जातियों के उद्धार के लिये एक ही विषय पर विचार करना नहीं है.

उन के सामाजिक सुधार के लिये हम को उन्हें उत्साहित करना और शिक्षित बनाना है. उन की आर्थिक दशा सुधारने के लिये हमें उन के लिये धन्धे और व्यापारका बन्द द्वार खोल देना है. इन सब कठिनाइयों का कारण इन पतित लोगों को अस्पृश्य मानना है; और यह धर्मोक्त माना जाता है इस लिये अब इस विषय पर धार्मिक दृष्टि से विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि इन सब झगड़ों का कारण जातिभेद ही मुख्य है और यह जातिभेद मनुष्यों की योग्यता का ध्यान न रखते हुए किसी भी जाति में केवल जन्म हो जाने की घटना पर नियत किया जाता है. क्या प्राचीन काल में भी इसी प्रकार की व्यवस्था प्रचलित थी? इस के उत्तर में यह बात बलपूर्वक कही जा सकती है कि प्राचीन काल में वर्ण शब्द का प्रयोग आर्य और दस्युओं की भिन्नता प्रदर्शक था. प्रसंगानुसार आर्य लोग गुण कर्मानुसार चार वर्णों में विभक्त किये.+ भगवद्गीता के अनुसार भी जन्म से जाति नियत नहीं की जाती थी, जैसा कि कहा है, " गुणकर्मविभागश: " वह वर्त्तमान 'ट्रेड्स यूनियन' (व्यापारिक मंडली) के समान गुणकर्म से ही एक ही जीवन में प्रसंगवश बदलती रहती थी, न कि जन्म से मरण पर्यन्त उसी वर्ण में गिनी जाती थी. अधोलिखित आपस्तम्ब के वाक्य मेरे विषय को और भी पुष्ट करते हैं.

आर्याः प्रयता वैश्वदेवेऽन्नसंस्कर्तारः स्युः । वासश्चालभ्य अप उपस्पृशेत ।

+ अर्थात् शूद्र भी आर्यों के अन्दर ही गिने जाते थे.

आर्याधिष्ठिता वा शूद्रा संस्कर्तारः स्युः। तेषां स एवाचमनकल्पः। अधिक महरहः केशश्मश्रुलोमनखवापनम्। उदकोपस्पर्शनञ्च सहवाससा। अपिवाऽष्टम्याष्वेव पर्वसु वा वपेरन्। परोक्षमन्नं संस्कृत मग्नावधिश्रित्याद्भिः प्रोक्षेत्। तदेव पवित्रमित्याचक्षते।

(पवित्र आर्य वैश्वदेव के लिये रसोई बनावें और वह उस समय भोजन की ओर मुख कर के न बोलें, न खावें और न छींक लेवें. केश, अंग अथवा वस्त्रों को स्पर्श कर के हाथ धो डालें.* आर्यों की सेवा में रहने वाले शूद्र रोटी बनाने का कार्य करें. स्नान करने की पद्धति वही हो जैसी उन के स्वामी आर्यों की. इस के अतिरिक्त प्रतिदिन शिर तथा दाढी मूंछ का मुंडन करावें और नख कटाया करें और वस्त्रों को धो कर स्वच्छ रक्खें. अथवा केवल अष्टमी और प्रतिपदा को ही क्षौर कराया करें. जब भोजन परोक्ष में बनाया गया हो तो सन्यासी उसे अग्नि पर सेंके और पानी छिड़क लेवे. ऐसा करने से वह भोजन देवताओं के खाने योग्य पवित्र हो जाता है.)

किसी रीति का प्रतिपादन प्रमाण पर ही निर्भर नहीं है किन्तु विज्ञान तथा बुद्धिद्वारा उस की परीक्षा करनी चाहिये. प्राचीन वैदिक समय में यही व्यवस्था प्रचलित थी, परन्तु आज हम गुण कर्मानुसार बदले हुए चार वर्णों की जगह अनेक अपरिवर्तनशील (जो बदली ही नहीं जा सकती ऐसी) जातियां देखते हैं. जिन का वेदों में लेशमात्र भी वर्णन नहीं. पुराणों में भी इन में से बहुत थोडी पाई जाती हैं. तो भी एक हिन्दु उन सब को धर्मोक्त बताता हुआ

* इस से विरुद्ध आज वही महाराज हैं जो रोटी पकाते हुए नाक पोंछ २ कर अपनी धोती तर रक्खें.

उन के अस्तित्व के लिये आग्रह कर सकता है. वह आप से यह भी कह सकता है कि मेरा हिन्दुधर्म वेद और पुराण मूलक नहीं. सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दि के रामदास, तुकाराम, तुलसीदास, कबीर, नानक, चैतन्य, आदि और भी हिन्दू साधु और कवियों ने जन्म से जाति मानने के विरोध में अपने मत दर्शाये हैं वे आत्मा की एकता को प्रतिपादन करते थे. अब हमारा कर्तव्य है कि उन के शिक्षण को आत्मा के भिन्न शरीरों के साथ बर्ताव करने से अपने दैनिक जीवन के प्रयोग में लावें; और प्रत्येक मनुष्य को उन्नत होने के लिये समान अवसर दें. इस बात का कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता कि गुण कर्म को कुछ न समझते हुए जन्म को ही प्रधानता दी जाय.

जिन का जीवन ऐसे समाज में व्यतीत हुआ है कि जिस समाज के लोग कुछ जातियों के साथ नीच वर्ताव करते हैं, वे लोग नीच वर्ताव करने के इतने आदी हो गये हैं कि कभी विचार तक नहीं करते कि यह वर्ताव कहां तक युक्तियुक्त है. जब शिक्षण और विकास को प्राप्त होती हुई बुद्धि उन को यह दर्शाती है कि शिक्षित संसार में जातियां कहीं भी नही हैं तो अन्त में उन को यह मानना पड़ता है. कि इन जातियों के साथ हमारा वर्ताव अनुचित और अन्याययुक्त है. इस प्रकार फिर उन को उस परमाणु वाले सिद्धान्त और वंशपरम्परागत जातिनियमों के सिद्धान्त की शरण लेनी पडती है. स्वयं इन (उच्च) जातियों के लोगों की स्थिति चाहे कितनी ही शोचनीय और पतित

क्यों न हो परन्तु वह तौ भी अपने को बचपन से ही छोटा देवता माना करते और इन पतित लोगों से अपने को कहीं बढ़ चढ़ कर समझते हैं और इसी कारण उन के साथ दुरभिमान तथा घृणित चेष्टाएं करते हैं. हम ने उन को पतित ही नहीं किया किन्तु वह 'विद्याग्रहण करने के अधिकारी ही नहीं' यह कह कर ऐसा प्रबन्ध बांध दिया है कि जिस से वह सदैव इसी अवस्था में बने रहें. उन के साथ सहानुभूति दर्शाना और कुछ कर खाने की सहायता देना वर्जित माना है. इसी प्रकार उन को अपने देश बन्धुओं के सहवास और मेलजोल से स्वतंत्रता-पूर्वक प्राप्त होने वाले लाभ से भी वञ्चित रक्खा है. हम ने उन के लिये नौकरी चाकरी का द्वार भी बन्द रक्खा है. वह अस्पताल, धर्मशाला, कुए, मेले तथा मन्दिरों से स्वतंत्रता पूर्वक लाभ नहीं ले सकते, यह स्वत्व भी हम ने उन से छीन लिये हैं. हमारे इस वर्त्ताव से समाज को धक्का पहुंचा, सामाजिक विकास को भी रोका और यहां तक समझने लग गये कि अधिक उन्नति करना हमारे रिवाज के विरुद्ध है. अब हमें इन की आर्थिक दशा पर कुछ विचार करना है. यद्यपि जीवनोपयोगी वस्तुओं की प्राप्ति उन के लिये दिन दिन आपत्तिरूप होती जा रही है और सारे संसार में वस्तुओं का मूल्य दिन पर दिन वृद्धिंगत हो रहा है परन्तु हम तौ भी उन के जीवन निर्वाहार्थ उन्हें अवसर ही नहीं देते जिस से वह उद्यम में लग कर जीविका प्राप्त कर सकें. सारांश यह कि इस छूतछात के

सिद्धान्त का उद्देश इन पतित जातियों को सभ्यता के लाभों तथा शिक्षण और समाज से मिलने वाले आश्वासन से पृथक् रखना है.

(तृतीयांश.)

' यह लोग इसी दशा में रहेंगे ' यह समझ रखना एक विचारमात्र ही है. समय आयेगा कि जब यह लोग छूतछात के सिद्धान्त को अन्याययुक्त और अनुचित अनुभव करेंगे. आओ ! हम उन के साथ मित्रता और सहायतारूप से हाथ बंटाते हुए उन की जागृति के शुभ दिन का स्वागत करें. हर्ष का विषय है कि क्रिश्चियनमिश्नरीज़ आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, थ्यासोफ़िकल आदि कई सोसाइटियां इन लोगों के उद्धरार्थ अपने अपने ढंग से अच्छा काम कर रही हैं. साधु रामदास जो कि एक कृतविद्य और कृतकर्म पुरुष थे वह कहते हैं.

दुसऱ्याचें दुःखे दुखवावे । परसंतोषे सुखी व्हावें ॥
प्राणिमात्रास मेळवून घ्यावें । बऱ्या शब्दे ॥

दासबोध दशक १२ समास १० ओवी

हमें दूसरे के दुःखमें दुःखी तथा सुख में सुखी होना चाहिये तथा प्राणीमात्र को प्रिय शब्दों के प्रयोग से अपनी ओर आकर्षित करना चाहिये.

यह नीति इतनी भावपूर्ण है कि प्रत्येक सच्चे देशप्रेमी को भायेगी. यदि हम उन से पूरा समानवर्तन नहीं कर सकते तो कम से कम ऐसा वर्त्ताव तो करें कि जो उन के मुसल्मान या क्रिश्चियन हो जाने पर करते हैं. मैं ने इस कुप्रथा का तत्व दर्शा दिया, अब

इस का प्रतीकार बताना है. सभ्यसमाज शासक और प्रजा इन वर्गों में विभक्त है. इस सामाजिक और धार्मिक कुप्रथा का प्रतीकार शासक वर्ग कई अंशों में कर सकता है. यद्यपि इस विषय में उस के अधिकार सीमाबद्ध हैं. भारतवर्ष का शासकवर्ग–कि जो अति नवीन विचारों का अनुगामी है, और जिसके धार्मिक और आर्थिक साधन अनन्त हैं. उसे क़ानून के अनुसार मनुष्य मात्र को एक दृष्टि से देखने तथा शान्तिस्थापन से ही सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु समय समय पर सहानुभूति से भी देखना चाहिये, कि उस की सब प्रजा को अपनी उन्नति करने के लिये पर्याप्त साधन प्राप्त होते हैं या नहीं. और उन प्राप्त हुए साधनों को वे सुगमता से उपयोग में ला सकते हैं या नहीं. बहुत से देशीराज्य इस स्थिति के हैं कि वह शासकवर्ग का कार्य सम्यक्तया कर सकते हैं, परन्तु उन के मार्ग में कुछ ऐसे निमित्त हैं कि वे वीरता से नया मार्ग नहीं निकाल सकते. ढील ढाल और भारत की बड़ी गवर्नमेंट का अनुकरण करना ही अच्छा और उचित समझते हैं. जिस की नीति कि सामाजिक और धार्मिक झगड़ों से बचने की उस समय तक रही है कि जब तक इसी नीति के परित्याग करने की अत्यन्त आवश्यकता न हो. जहां की आबादी का एक छठा भाग पतित अवस्था में पददलित हो रहा हो वहां कोई भी शासकवर्ग उन के उठाने के अत्यावश्यक विषय पर विचार किये बिना नहीं रह सकता.

इन कुप्रथाओं के सुधारने के लिये गवर्नमेंट की चाहे कितनी ही इच्छा क्यों न हो परन्तु सफलताप्राप्ति तो समाज के सुविचारों पर निर्भर है. हमें अपने धार्मिक विचारों का संशोधन करने की आवश्यकता है. धर्म वह होना चाहिये जो व्यक्तिगत या सामाजिक किसी भी प्रकार की उन्नति को रोक न सके. पिछले समय में लाखों मनुष्य हमारे इस दुष्ट व्यवहार के कारण हिंदूधर्म को छोड़ कर क्रिश्चियन और मुसल्मान हो गये और अब भी हर साल हो रहे हैं. क्या ! हिन्दू अपनी इस घटती हुई संख्या को देख कर भयभीत नहीं होते ? मिथ्या है वह धर्म जो हमारे लाखों सजातीय भाइयों को अज्ञानता में डाले और व्याधि, कुप्रथा तथा दुःख के समुद्र में डुबो दे और सब प्रकार से पददलित करे. जहां तक मैं समझता हूं मैं ने सिद्ध कर दिया कि स्पृश्यास्पृश्य का सिद्धान्त हिन्दुधर्मानुकूल नहीं, तथा उस वैज्ञानिक उन्नति से बल्कुल भिन्न है जो उस धर्म के उपदेष्टाओं ने अपने धार्मिक साहित्य में दिखलाई है. सम्भव है कि यह सिद्धान्त पहिले सामाजिक आवश्यकताओं पर अवलम्बित रहा हो पर वह समय अब बीत गया और अति पुराना हो गया किन्तु वह सिद्धान्त शेष है तथा प्राचीन प्रचार के कारण उस ने धर्म का रूप धारण कर लिया.

जब हम अपने सब धार्मिक सिद्धान्तों के परिवर्तित हो जाने पर अपरिवर्त्तनशील मानते रहे तभी से वह उन्नति के मार्ग में बाधक

हुआ. इन के अतिरिक्त–किन्तु अन्तिम नहीं–एक महत्वपूर्ण इन के वास्तविक सुधार की बात यह है कि यह लोग अपना सुधार अपने आप करें, अर्थात् अपनी उन्नति करते हुए अपने साथ न्याययुक्त वर्त्ताव होने के स्वत्व मांगें; परन्तु इस की प्राप्ति के लिये सहवासिनी अपनी अन्य उच्च जातियों के लिये दुःखरूप न हों; क्यों कि अपने सेवा धर्मरूप कर्त्तव्यों की पूर्त्ति पर समाज का स्वास्थ्य और सुख निर्भर है.

अब हम राष्ट्रीय दृष्टि से इस प्रश्न का विचार इतिहास के आधार पर करते हैं. कोई भी देश जब तक पुजारी, पादरियों के पंजे में रहा तब तक वह कभी भी उन्नत न हुआ. स्पेन आज अपने उच्चासन से गिर कर अपने प्रथम के वैभव की केवल तृतीयांश शक्ति ही रखता है. उस का पहला आसन इंग्लेंड ने ले लिया जो कि अपने कन्धे को धर्मगुरुओं के जुए के नीचे से निकलते ही उन्नति की चोटी पर चढ़ने लगा. अपने परम्परागत विचार और रीतियों के त्यागने में जो बाधायें उपस्थित होती हैं उन्हें मैं जानता हूं. यदि भारतीय प्रजा राष्ट्र की उन्नति की इच्छा करती है और अपने राष्ट्रीय प्रभाव को बढ़ाना चाहती है तो उसे इन झूंठे विचारों को अन्तःकरण से छोड़ देना चाहिये कि जिस में एक या एक से ही अधिक नहीं किन्तु जातिमात्र भाग ले सकती हो. लोग इस प्रकार के शासन की याचना करते हैं कि जिस से राजाओं और शासकवर्ग के अधिकार परिमित हो जायं. उन को चाहिये कि इस अत्याचारयुक्त और स्वे-

च्छापूर्ण धार्मिक व्यवहार को रोक दें जिस से हमारे राष्ट्र का जीवन नष्ट हो रहा है. हमारे राष्ट्र के लोग आत्मसम्मान को भूल रहे हैं. उन का उत्साह और व्यक्तित्व नष्ट हो रहा है.

उन्नति का वह समय भी था जब कि विद्या थोड़े ही मनुष्यों तक थी और लोग अपने विचारों से काम न ले कर केवल पुरोहितवर्ग की आज्ञाओं के आधार पर ही चलते थे. अब यह वर्त्तमान युग समाप्त हो चुका है. अपने को देवता मानने वाले, अत्युक्ति के साथ अपने महत्व का वर्णन करने वाले और अविद्या में ही सन्तुष्ट रहने वाले धर्मोपदेष्टाओं के उपस्थित रहने का यह समय नहीं है. इस श्रेणि के धर्मोपदेष्टा अब उन्नति के पहिये के साथ घसिट रहे हैं. वे मनुष्यों के नेता होने के स्थान में शैतान का काम कर रहे हैं.

अन्त में हमें अपनी स्थिति का विचार करना चाहिये. दूसरे देशवासी जनसंख्या की वृद्धि को बल का साधन मानते हैं और हम उदारता पूर्वक अपने राष्ट्र के एक छठे भाग को त्याग रहे हैं.

हम 'यलोपरेल' के विषय में सुन चुके हैं. 'वार लार्ड ऑफ यूरोप' की कथा पढ़ी है. जिस का अभिप्राय यह है कि संयुक्त चीन ने अपनी महती जनसंख्या के कारण मान पाया.

जर्मनी, जहां की जनसंख्या दिनदूनी रातचौगुनी बढ़ रही है वह अपने वैभव, सम्पत्ति में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त कर रहा

हैं. फ्रांस के नेता परिमित सन्तानोत्पत्ति के विरुद्ध गला फाड़ २ चिल्ला रहे हैं कि इस से जाति नाश को प्राप्त हो जायेगी. और हिंदुस्थान में हम उसी राष्ट्रनाशरूपी महापाप को कर रहे हैं. वह समय आ रहा है कि जब हम से सभ्य संसार हमारी इस कार्यवाही के विषय में पूंछेगा कि–तुमने किस प्रकार अपने देश को राष्ट्रमंडल में स्थानापन्न होने के योग्य बनने में सहायता दी. वास्तव में यह वह समय है कि जब हम इन करोड़ों अस्पृश्यों से हाथ मिलाने के लिये आगे कदम बढ़ावें और एक राष्ट्र की हैसियत से न्याय, आत्मसम्मान और अधिकार के स्वत्वाधिकारी बनें. "

इस से बढ कर और क्या युक्तियुक्त विशेष कोई लिख सकता है. श्रीमन्त महाराज ने पतितों के विषय में यह लेख लिखकर विद्वान् मंडली के प्रति प्रकृत विषय पर विचार करने की भारी जुम्मेवारी डाल दी है जिसके फल में कई राजे महाराजे इस ओर लक्ष्य देने भी लगे हैं. श्रीमंत बड़ोदा नरेश ने न केवल लेख और अनेक वक्तृताओं से इस विषय को सुलझाया ही है किन्तु इस को बड़ोदे में अमल में भी दिखाकर अपने वचनों को सिद्ध कर बताया है जो हम प्रकृत पुस्तक के किसी अन्य स्थल पर पाठकों के दृष्टिगत करेंगे.

इन लेखों के उद्धृत करने का उद्देश यही है कि जिस विषय की ओर जनता का ध्यान तक नहीं जाता उस विषय पर कार्यक्षेत्र में आने की कितनी आवश्यकता है.

हिन्दु स्वत्व रक्षक हिन्दी के एकमात्र जागृत पत्र "अभ्युदय" के सम्पादक महोदय के वह उदार विचार जो उन्होंने अपने लीडिंग आर्टीकल में दिखलाये हैं वह हम यहां पर पाठकों के अवलोकनार्थ उद्धृत करना उचित समझते हैं और वह यह हैं. §

हिन्दुत्व के यथार्थ अभिमानी 'अभ्युदय' के सम्पादक के आभ्युदयिक विचार.

"कोढ़ में खाज की तरह हम हिन्दु इस समय आर्थिक और नैतिक अधःपतन के साथ ही अपनी संख्या छीजने की बिभीषिका के भी शिकार हो रहे हैं। कई कारणों से–जिनमें हमारी बदसलूकी भी एक है–हमारे निम्न भाई क्रमशः हमारे हाथ से निकले जा रहे हैं। अज्ञान और मिथ्या अभिमान के कारण हम अपने पैर में आप कुल्हाडी मार रहे हैं अपने भाई ही को धक्का देकर गैरों के गिरोह को बढ़ा रहे हैं। अपनी संख्या के ह्रास का यदि हम शीघ्र उपाय नहीं करते तो हमारा मनुष्य कहलाना व्यर्थ है। हमें विश्वास है कि लाला हंसराज सरीखे सच्चे और निःस्वार्थ नेता के वचनों का श्रोताओं और हमारे पाठकों पर भी वही प्रभाव पड़ेगा जो पड़ना चाहिये। हम इस सम्बन्ध में अपनी ओर से केवल दो एक बातें कहना आवश्यक समझते हैं।

अछूतों के उद्धार का अर्थ हम यही समझते हैं कि हमारे समाज में जो लगभग ५ करोड़ 'अस्पृश्य' भाई हैं, उनको शिक्षित और समझदार बनाया जाय, उनमें आत्म-सम्मान का भाव जागृत

§ अ० ११-३-१६.

किया जाय, उनको व्यवसायों में लगाकर उनकी आजीविका का प्रबन्ध किया जाय, उन्हें हिन्दू धर्म की दीक्षा दी जाय, मुसलमान और ईसाई की अपेक्षा हम उनका अधिक आदर करें क्योंकि वे 'अपने' हैं हिन्दू जातीय शरीर के आधार हैं, द्विज वर्ण के लोग उनपर अपनी बड़ाई का दावा न करें क्योंकि अपना कर्तव्य पालन करते हुए वे भी द्विजों के समान ही आदर के अधिकारी हैं। हिन्दू जाति के मंडल से वे बिछुड़ने न पावें, इसके लिये भरसक उद्योग करना हमारा प्रधान कर्तव्य है। इस मार्मिक विषय में क्या सनातन-धर्मी और क्या आर्यसमाजी, जातिहितैषी मात्र की गहरी और एकसी सहानुभूति है। हमारा नम्र निवेदन इतना ही है कि इस प्रश्न को साम्प्रदायिक रूप न दिया जाय और इसके सम्बन्ध में जो आन्दोलन हो वह लोकमत को मिलाकर किया जाय. समाजसुधार के सभी प्रश्न स्वभावतः नाजुक और टेढ़े हुआ करते हैं और प्रचलित रूढ़ियों और रिवाजों का अन्त कर देना कोई सरल काम नहीं है। और समाजसुधार के मैदान में सरपट दौड़ना या छलांगें मारना कोरी नादानी है; शान्ति और सुमति के साथ क्रमिक उन्नति करना, यही हमारा मूलमंत्र होना चाहिये। थोड़े से विवेक और दूरदर्शिता के अभाव से समाज-सुधार का आन्दोलन लोकप्रिय होने से रह गया। हम जानते हैं कि मूर्खता के कारण घृणा का भाव कहीं कहीं इतना प्रबल हो गया है कि ऊंची जातियों के हिन्दू अपने

निम्न भाइयों को कुंए की जगत पर भी नहीं चढ़ने देते और मन्दिरों में घुसने से रोकते हैं; जैसा कि लाला हंसराज ने बतलाया, दक्षिण में " ६० फुट के अन्दर किसी शूद्र की छाया पड़ जाने से लोग अपने को अपवित्र मान लेते हैं और अपने कपड़े धोते हैं ", और अन्त्यज रामचन्द्र जब बप्तिस्मा लेकर मि० डेविड बन जाता है तब सभी लोग उससे हाथ मिलाने में अपना फ़ख्र (गौरव) समझते हैं। इधर तो ज्यादती है ही, उधर समाज सुधारकों में भी कुछ ज्यादती पाई जाती है। निर्धनता, अज्ञान, और कुसंस्कारों में जकड़े हुए शूद्र के लिए कुछ शिल्पव्यवसाय या शिक्षा का प्रबन्ध करने के स्थान में वे चट जनेऊ पहिनाकर उसे ' ब्राह्मण बना देते हैं ! समाज के अधिकांश लोग यह दृश्य किसी तरह पसन्द नहीं कर सकते। इसलिए जैसा कि सभापति पं० श्रीकृष्ण जोशीजी ने उस दिन स्पष्ट कह दिया, अपने निम्न भाइयों का उद्धार करने पर भी उनके साथ रोटी-बेटी का सम्बन्ध करना आवश्यक नहीं है। रही छुआछूत की बात सो, इसके सम्बन्ध में इतना ही कहना अलम् होगा कि भंगी, चमार का शरीर भी उन्हीं पंचतत्वों से बना है जिनसे अन्य सबका, अपवित्र केवल उनका काम समझा जाना चाहिये। उदाहरणतः गंगा नहाये हुए चमार को छू जाने पर प्रायः लोग संकोच नहीं करते और इसी तरह निम्न श्रेणि का मनुष्य जब कोचमेन आदि का काम करने लगता है तब उससे शायद ही परहेज़ किया जाता है। इसी तरह शूद्रों

की साधारण मानसिक अवस्था, कर्तव्य, प्रवृत्ति और चरित्र देखकर और शायद वेणु तथा वृत्रासुर के उदाहरणों से उत्तेजित होकर हमारे कुछ आचार्योंने उन्हें वेदों का अनधिकारी बतलाया है परन्तु समय वह आ गया है कि इस नियम का कड़ाई से पालन करना बिलकुल अनावश्यक और असम्भव समझा जाने लगा है।

समाज की वर्तमान परिस्थिति और लोकपरम्परा के विचार से हम फिर इस बात को दोहराना चाहते हैं कि शीघ्रता के साथ नहीं वरन् विवेक के साथ और स्वतंत्र होकर नहीं वरन् जनता को साथ लेकर अछूतों के उद्धार का आन्दोलन किया जाय। "

सम्पादक महोदय के विचार क्या ही अनूठे हैं. देशकाल परिस्थिति इन सबका विचार करके ही काम करने की आवश्यकता है.

अलवरराज्यप्रतिष्ठित श्रीयुत मुंशी जगमोहनलालजी के उच्च विचार.

बड़ोदे की महाराष्ट्र परिषद् में श्रीयुत मुंशी जगमोहनलालजी ने निम्नलिखित अपने शुभ विचार दर्शाये " ... ...जब हम Father Hood of God ईश्वर सर्व सृष्टि का पिता होने का सिद्धांत स्वीकार करते हैं तो हम सब मनुष्य एक ईश्वर पिता के बालक हैं तथापि Brotherhood of man मनुष्यके भ्रातृभाव का सिद्धान्त क्यों नहीं समझते यह आश्चर्यकारक सा है ! ... . यदि हमें अपनी और धर्म की उन्नति करनी हो तो उच्च जातियों के लोग नीच जातियों के लोगों के साथ जो तिरस्कार-

भाव रखते हैं उसे छोड़ देना चाहिये. तिरस्कार से नहीं किन्तु प्रेम से ही विजय होती है. जो आप हिन्दुजन न समझें तो हिन्दुओं की तिरस्कृत हुई जातियां विधर्मियों का आश्रय लेंगी, उन का धर्म सबल होगा और हम निर्बल बनेंगे, इस लिये चिरकाल की अपनी यह अत्याचार की नीति बंद करनी चाहिये और तिरस्कारको दूर कर भ्रातृभाव बढाना चाहिये"

अब हम पाठकों को वाग्मिप्रवर देशरत्न धर्मधीर लाला लाजपतरायजी की ख्यातिलब्ध अनूठी वक्तृता का भी स्वाद चखाना आवश्यक समझते हैं. और वह अधो लिखित हैं.

लोकमान्य श्रीमान् लाला लाजपतराय जी के मर्मभेदी विचार.

§ "दुनियां में कोई चीज़ सदा एक हालत में नहीं रह सकती। परिवर्त्तन स्वाभाविक है। डाक्टर हमें बतलाते हैं कि शरीर के परमाणु भी सात वर्ष में बदल जाते हैं। तबदीली से घबडाना नहीं चाहिये; देखना यह चाहिये कि तबदीली तरक्की की तरफ ले जाती है या नहीं। मनुष्यों की तरह जातियों में भी अपनी शख्सीयत होती है जिसके द्वारा उनकी तमीज़ अन्य जातियों से की जाती है। इसी शख्सीयत के नाश होने पर कहा जाता है कि अमुक जाति की मौत हो गई. इतिहास से मालूम होता है कि दुनियां में बहुतसी कौमें

§ "अभ्युदय" २८-२-१४. इलाहाबाद में २१-२-१४ को दी हुई वक्तृता.

आईं जो इस जमाने में मर गईं। प्राचीन जातियों में से हम भी एक हैं हमारी दशा बहुत कुछ गिर गई है, लेकिन फिर भी कौमी हैसियत से हम जिन्दा हैं। संसार की और कोई कौम हिन्दू नहीं कहलाई जा सकती। इसका बडा कारण यह है कि हिन्दू जाति समय की आवश्यकताओं कि अनुसार सदा तबदीली करती रही है, तबदीली जिन्दगी की एक अलामत है। लेकिन तबदीली करने में दो बातों पर ध्यान रखना चाहिये. पहिली यह कि तबदीली तरक्की के वास्ते ही की जाय और दूसरी यह कि तबदीली उस हद तक न की जाय कि अपनी कौमी शख्सीयत (character) भी नष्ट हो जाय। मुफ़ीद और ज़रूरी तबदीली करने में कभी संकोच न करना चाहिये। आज दिन दो बातों में तबदीली की बडी ज़रूरत है वे ये हैं (१) जात-पांत (२) छूतछात। जातिबन्धन जितना कठोर आज है उतना पहिले कभी नहीं था! छूतछात का ख्याल भी मुसलमानी हमले से पहिले बहुत कमज़ोर था या नहीं था। जो हो, यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वह इतना नहीं था जितना इस समय है।

आजकल ब्राह्मणों का भी बड़ा अधःपतन हुआ है। मुझे प्राचीन स्मृतियों में कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जिससे ब्राह्मणों का रसोइया होना सिद्ध होता हो। अपनी सरताज जाति को रसोइया बनाने का उदाहरण किसी भी देश के इतिहास में नहीं मिल सकता। रसोइया के काम के लिए केवल ब्राह्मण को अधिकारी

ठहराने से आर्य सभ्यता पर बड़ा कलंक लगता है। ब्राह्मण, लोगों के नेता थे, उन्हें यह पदवी इस लिए दी गई थी कि वे लोगों को शिक्षा दें और उनकी भलाई की बातों को सोचें। किन्तु कैसे खेद की बात है कि आज उन्हींसे रसोइया का काम लिया जाता है।

मेरे विचार में हिन्दू जाति प्राचीन समय में अन्य जातियों को भी अपनी सभ्यता, और धर्म देकर अपनालेती थी। हून्स, सिथियन्स आदि जो जातियाँ देश में बाहर से आईं उन का अब कोई चिन्ह नहीं मिलता,* सिवा इस के कि वे भी हिन्दू हैं। उनमें जो क्षत्रिय होने योग्य थे वे क्षत्रिय बना लिये गये और इसी तरह अपनी अपनी योग्यतानुसार और लोग शामिल कर लिये गये। कुछ विद्वानों का कहना है कि मद्रास के ब्राह्मण भी असली आर्य नहीं हैं, वे द्राविड़ आदि जातियों के थे और प्राचीन आर्यों ने उन्हें अपनी सभ्यता देकर ब्राह्मण बना लिया। यदि यह सच है तो इससे मेरी ऊपर कही हुई बात भली प्रकार प्रमाणित हो जाती है। शायद हिफाज़त खुदइख्तियारी ही में उन्होंने इस उपाय से काम लिया था।

प्राकृतिक नियम के अनुसार मनुष्य अपने को बचाने के समय सिकुड़ जाता है। मेरा ख्याल है कि मुसलमानों के आक्रमण के समय हिन्दुओं ने उसके मुक़ाबले में अपने को निर्बल पाया

* स्वर्गस्थ माननीय जस्टिस रानाडे ने भी कहा है कि दाक्षिणात्य ब्राह्मणों में विदेशी जातियां मिल गई हैं. (लेखक)

और इसी लिए वे सिकुड गये। तभी से छूतछात चली। आवश्यकता के समय सिकुड़ना मैं बुरा नहीं समझता क्योंकि यह आवश्यक है। उस समय जाति बन्धन कड़ा कर दिया गया, और आत्मरक्षा के लिए पृथक् पृथक् बाड़े बना लिये गये। यदि इस उपाय से काम न लिया जाता तो शायद सारे हिन्दुस्थान में आज मुसलमान ही नज़र आते। अन्य देशों में ऐसा ही हुआ है और मुसलमानों द्वारा जीते हुए देशों में अधिकांश लोग मुसलमान हो गये हैं। इस लिए सिकुड़ना बुरा नहीं है किन्तु ज़िन्दगी इस का नाम है कि सिकुड़ने के कारणों के दूर होने पर कौम फिर अपने को फैला दे। ज़िन्दगी की दो अलामतें हैं, पहिली यह कि अपने को नुकसान पहुंचाने वाली चीज़ का सामना कर सके और दूसरी यह कि मुसीबत टलने पर अपने को फैला सके। दूसरी अधिक महत्वपूर्ण है। मुसलमानों के समय हिन्दू अपने को फैला नहीं सकते थे, इस का एक कारण यह था कि तब शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था! सिकुड़कर उन्होंने अपनी जुदा जुदा टोलियां तो बना लीं लेकिन अपने को दीवारों के अन्दर बंद करने में उन्होंने गलती की। १००० वर्ष तक भी हम जीते रह गये, लेकिन अब वह ज़माना नहीं है। वर्तमान समय में विद्या, विज्ञान और यात्रा के सरल साधनों के सामने हम सिकुड़कर नहीं बच सकते। अपने आपको फैलाना हमारे लिए आवश्यक हो गया है। आप के अन्दर जो एक क़िस्म की तंगदिली,

तास्सुब और छूतछात पैदा हो गई है उसको दूर कीजिये। मुसलमानों और ईसाइयों को देखिये। यदि किसी जगह एक मुसलमान या ईसाई पर विपत्ति आती है तो सारे संसार के मुसलमान या ईसाई उसकी मदद के लिए तैयार हो जाते हैं। मगर शोक की बात है कि हिन्दूलोग हिन्दुओं के साथ हमदर्दी करने के लिए तैयार नहीं हैं। रास्ते से गुज़रनेवाला मुसलमान यदि दूसरे मुसलमान भाई का किसी हिन्दू से झगड़ा होते देखता है तो वह विना कारण पूछे ही अपने सजातीय का पक्ष लेता है। लेकिन हिन्दू लोग हिन्दू स्त्रियों और बच्चों पर भी अत्याचार होते देख कर नहीं बोलते; इसका कारण यही है कि इनमें कौमियत का भाव नहीं है और यदि है तो बहुत ढीला है। ये समूह-संबंधी उत्तरदायित्व (Corporate responsibility) को नहीं समझते। आजकल हमारी जाति दो पक्षों के बीच में है। एक तो वे लोग हैं जो हिन्दू कहलाने की परवाह नहीं करते और उनसे लगाव नहीं रखते। वे कहते हैं कि मुश्तरका रखनेवाली कोई चीज़ हिन्दुओं में नहीं है। यह आज़ाद ख्याल रखनेवाली जमात है। मेरा कहना है कि अपनेको आज़ाद रखनेवाली जमात भी हिन्दुओं में रह सकती है। शर्त यह है कि उस को सम्पूर्ण हिन्दुओं के साथ प्रेम हो और वह उनके हित को अपना हित समझे। दूसरा पक्ष कट्टर है। ये लोग नहीं चाहते वि पार्थक्य बढ़ानेवाले बाड़े गिराकर एक कर दिये जायँ। यह खेद

की वात है । उन्हें ध्यान देना चाहिये कि अब आत्मरक्षा के लिए हिन्दू जाति में कुछ परस्पर प्रेम पैदा करने और भेदभाव दूर करने की आवश्यकता है ।

हमारा धर्म है कि हम जिस कौम और जिस भूमि में पैदा हुए हैं उसको दूसरी जातिओं और देशों से अच्छा समझें। बिना आत्म-सम्मान के भाव के किसी जाति ने उन्नति नहीं की है। देश में भिन्न २ जातियां बसती हैं किन्तु हिन्दुओं की स्थिति ऐसी है कि वे ' संसार हितैषी ' (cosmopolitan) बन कर अपनी हितरक्षा नहीं कर सकते। कुछ लोग कह तो देते हैं कि सभी ईश्वर के बन्दे हैं किन्तु ' संसारहितैषी ' बनना कठिन काम है। अगर सभी ईश्वर के बन्दे हैं तो यूरोप में जो इतनी दौलत पड़ी है वह क्यों नहीं हमारे देश के बहुसंख्यक दुःखित गरीबों जे लिए आ जाती ? मैं समझता हूं कि जातिओं की भिन्नता संसार का एक स्वाभाविक क्रम है और हमें बिना दूसरे को हानि पहुंचाये–उससे लाभ उठाना चाहिये। हमें देखना चाहिये कि न केवल हम और हमारे समस्त भाई ही हिन्दू बने रहें किन्तु अगर सम्भव हो तो अन्य लोग भी आकर हमसे मिलें और हिन्दू हो जायँ, हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये जिससे हम न केवल सुखी ही हों किन्तु जिससे हमारे भीतरी बल की भी रक्षा हो। कौमी जिम्मेदारी के भाव के लिए यह आवश्यक है कि हर एक व्यक्ति को अपने समस्त जातिभाइयों के

साथ प्रेम हो। आप जितना उनसे अलग रहेंगे, उतना ही प्रेम घटेगा। जिस जाति में एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को छू नहीं सकता वह कभी सुखी नहीं रह सकती. किसी मनुष्य का यह हक नहीं है कि वह दूसरे मनुष्य को हिकारत की निगाह से देखे। जो मनुष्य अत्याचार करता है और जो अत्याचार सह लेता है वे दोनों सामाजिक अपराधी हैं। ज़ुल्म करने की आज्ञा देनेवाला समाज कभी उन्नति नहीं कर सकता। हमें अपने गरीब से गरीब और मैले से मैले जातिभाई को भी प्रेम की निगाह से देखना चाहिये। यदि समाज में एक भी व्यक्ति असमर्थ या दुःखी है तो उसकी तकलीफ दूर करने की जिम्मेदारी समाज के समस्त व्यक्तियों को अपने ऊपर समझनी चाहिये। बिना इसके कौमी या मजमुई जिम्मेदारी का भाव लोग ग्रहण नहीं कर सकते। जिस प्रकार शरीर के एक अङ्ग में पीडा होने से सारा शरीर दुःखी होता है उसी प्रकार समाज के एक व्यक्ति का भी दुःखी या मूर्ख होना सारे समाज के लिये चिन्ता का कारण होना चाहिये। यूरोप के लोगों में यह भाव मौजूद है कि हमारी जाति का प्रत्येक व्यक्ति अन्य जातियों के लोगों से अच्छा हो जाय। उद्योग धन्धों में लगे हुए लोगों की शिक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जा रहा है जिससे वे अन्य देशों की अपेक्षा सस्ती और अच्छी चीज़ें तैयार कर सकें। यह किसी प्रकार की उदारता नहीं है, यह केवल आत्मरक्षा का उपाय है। गवर्नमेंट का यह कर्तव्य है कि वह

अपने किसी प्रजाजन को अयोग्य न रहने दे। सामाजिक जुम्मेदारी का भाव प्राचीन समय में हममें था। मनु यह नहीं कह गये कि ब्राह्मण केवल अपने लिये ही विद्या पढ़ें; उनकी आज्ञा है कि वह सब के लिए पढ़ें। हमारी भिन्न भिन्न जातियां हिन्दू शरीर के अंग हैं। अगर एक भी अंग कमज़ोर होगा तो सारा शरीर कमज़ोर हो जायेगा। क्या आप पैर को हिकारत की निगाह से देख सकते हैं? क्या आप उसको नहीं धोते और उसकी रक्षा नहीं करते? इसलिए कौम का कोई हिस्सा, चाहे वह निर्बल हो या बलवान्, मूर्ख हो या पंडित, हिकारत के लायक नहीं है। कौम में ये दो गुण अवश्य होने चाहियेः—(१) मातृभाव और (२) न्याय का भाव। मातृभाव बड़ा पवित्र और उच्च भाव है। माता का प्रेम सब से बड़ा है। वह अपने योग्य और अयोग्य सभी लडकों को प्रेम की दृष्टि से देखती है। इसीलिए हिन्दुओं ने पूजनीय वस्तुओं को माता का नाम दिया है। समाज के समस्त व्यक्तियों को परस्पर ऐसा ही भाव रखना चाहिये। न्याय का भाव भी बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि उसके बिना कोई जाति उन्नति नहीं कर सकती। जहां अन्याय होगा वहां अवश्य झगड़े होंगे। हम देखते हैं कि हिन्दुओं में दोनों भाव नहीं हैं। हम लोगों में अगर एक मनुष्य आराम से रहता है तो उसे परवाह नहीं कि दूसरा भाई किस तरह दिन काटता है या उसका लड़का शिक्षा पाता है या

नहीं। अगर हम अपनी उन्नति करना चाहते हैं तो हम में प्रेम और न्याय के भाव पैदा होने चाहिये। मैं बिना सङ्कोच कह सकता हूं कि अगर हमारी अछूत जातियों की ऐसी ही हालत बनी रहेगी जैसी इस समय है तो हिन्दुस्थान उन्नति नहीं कर सकता। हम सब जानते हैं कि गठीला बदन अच्छा होता है। सेठों के शरीर मोटे और ढीले हो जाते हैं, उन में न सौन्दर्य रहता है, न बल और न फुर्ती. समस्त हिन्दुओं का परस्पर सम्बन्ध दृढ होना चाहिये जिससे सारे हिन्दूशरीर में समानता से खून पहुंच सके। समाज में एक सूत्र से बंधने की उत्कंठा होनी चाहिये और सब व्यक्तिओं को एक दूसरे के साथ ज़िम्मेदारी का भाव ग्रहण करना चाहिये कुछ लोग सोचते हैं कि अछूत जातियां अगर पढ़ गईं तो नौकरी कौन करेगा ? किन्तु भाइयो ! क्या आप उन्हें सचमुच शिक्षा पाने से रोक सकते हैं ? सवाल यह है कि अछूत जाति का हमारा भाई ब्रह्मानन्द होकर पढ़े या टामस् होकर पढ़े। अछूत जातियाँ हिन्दू समाज का आधार हैं, यदि वे नीचे से सरक जायँगी तो आपकी हालत और भी खराब हो जायगी। इस लिए तुह्मारा ही हित इस में है कि तुम उनकी उन्नति करो। अगर वे निकल जायँगी तो वह काम जो वे आज कल करती हैं तुम्हे करना पड़ेगा। यदि स्वयं उस काम को अनुचित समझते हो तो कल और मशीनों का आश्रय लेना चाहिये। कुछ भाइयों को अभिमान है कि हम ब्राह्मण हैं।

किन्तु दुःख से कहना पड़ता है कि आजकल कोई सच्चा ब्राह्मण नहीं दिखलाई देता। हिन्दू जाति की एक यह खूबसूरती है कि उसकी व्यवस्था ने उसके नेताओं को निर्लोभ बना दिया। धन पापों का मूल है, इस लिए ब्राह्मणों को धन संग्रह करना अनुचित बतलाया गया है। इसीसे देखो ब्राह्मणों ने कैसी मर्दानगी के साथ हिन्दुओं की रहनुमाई की, जब ब्राह्मण गिरे तो सब गिरे। आगे ब्राह्मण अपने स्पर्श अथवा दृष्टिमात्र से अपवित्र को पवित्र बना लेता था किन्तु अब किसी डोम की छाया पड़ने से वह स्वयम् अपवित्र हो जाता है। आजकल जिस जाति को देखो वही अपने को क्षत्री कहलाना चाहती है। अर्ज़ियां दी जाती हैं कि हम क्षत्री लिखे जायँ। मालूम नहीं किस बिरते पर यह तत्ता पानी है। कोई समय था जब वैश्य लोग उदारता के साथ दान करते थे और तीनों आश्रम उनके आधीन थे। किन्तु आजकल झूंठी गवाहियां देना और बुरे तरीक़ों से धन कमाना उन का काम है। ये ही जातियां हैं जो अपनी उच्चता का अभिमान करती हैं। यदि आज एक भी सच्चा ब्राह्मण होता तो यह सब दुर्दशा न होती। दूसरे एक नये फेशन के ब्राह्मण पैदा हो रहे हैं जो कौम का उद्धार करना चाहते हैं। ये लोग किसी निम्न पुरुष को अपने पास नहीं फटकने देते किन्तु होटल में जब मटन, चाय खाने की ज़रूरत होती है तब किसीसे बिलकुल नफ़रत नहीं करते। ऐसी 'सामाजिक मक्कारी, से कोई जाति बड़ी नहीं हो सकती।

हमें उचित है कि अपने नीच से नीच हिन्दू भाई का भी अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक आदर करें । किसी धर्म वाले से घृणा करने की ज़रूरत नहीं है किन्तु यह स्पष्ट है कि जब तक हमारा भाई हिन्दू है तब तक उसका लगाव हमसे अधिक है । हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि हमारी नीच जातियों में ईसाई मिशनरी लोग निहायत जांफ़िशानी, कुर्बानी और इन्सानियत के भावों के साथ काम कर रहे हैं । कहिये इन लोगों के साथ उस का प्रेम होगा या उन लोगों के साथ जो उन को अपनी छाया से भी दूर रखते हैं ?

मुझे यह कहने में कुछ भी ताम्मुल नहीं है कि अछूत जातियों की उन्नति का प्रश्न सारी हिन्दू जाति के जीवन और मृत्यु का प्रश्न है : जब तक समस्त हिन्दू अपने इन निम्न भाइओं को छाती से नहीं लगाते तब तक उन्नति नहीं हो सकती । जब तक हमारे यह भाई राम और कृष्ण कहते हैं हिन्दू रीतियों को मानते हैं तब तक अपने शरीर के अङ्ग की तरह उनको प्यार करना हमारा कर्तव्य है। अगर आपके अन्याय और ग़फ़लत से ये अछूत जातियां निकल जायँगी तो क़ौमी जिस्म बहुत ही निर्बल हो जायगा और अपनी अधिक संख्या के दावे की बुनियाद भी जाती रहेगी । यदि आप उनको ऊपर उठायेंगे, उन्हें शिक्षा देंगे; उन्हें (social status) ' सामाजिक पद ' देंगे तो आप कोई उपकार नहीं करेंगे किन्तु केवल अपनी ही रक्षा करेंगे और अपने को नाश होने

से बचायेंगे । आत्मसंरक्षा हमारा पहिला कर्तव्य है मत समझो कि हम अमीर हैं और ज़माने की झपेट में नहीं आये हैं । अमीर, और ग़रीब सुखी और दुःखी सभी कौमी है-सियत से एक ही किश्ती पर सवार हैं । अपनी जाति और अपने धर्म को हमें दुनियां की हर एक चीज़ से अच्छा समझना चाहिये और ' हिन्दू ' रह कर हमें आगे बढ़ना चाहिये । हमारी अयोग्यता से यद्यपि हमारी पुरानी सभ्यता गड्ढे में गिरी हुई है तथापि वह सब से अच्छी है । प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता 'अलफ्रेड रसल वैलेस' कहता है कि वेदों में जिस श्रेणि की नीतिशिक्षा दी गई है वह संसार के किसी धर्म से निम्न नहीं है । मैं तो समझता हूं कि यह सर्व-श्रेष्ठ है किन्तु अगर यह भी मानें कि वह किसीसे कम नहीं है तो भी हमारे लिए यह कम अभिमान की बात नहीं है । ग़रीब अच्छा है बनिस्बत उसके जो दूसरे के टुकडों को खाकर बड़ा हुआ है ।

हमारी अपील तुमसे यह है कि तुम अछूत जातियों को उठाओ और यह संकल्प करो कि सारी हिन्दू जाति में कोई भी अछूत न रहे। हमें अभी तक दौलत ने नहीं बचाया वही देश बना है, वही ज-ल वायु है और वही आकाश है, किन्तु फर्क यही हो गया है कि प्राचीन समय के मनुष्य मनुष्य थे, वे कोल के पक्के थे, अब हमारे अन्दर न क़ाविलियत है, न ग़ैरत है और न इन्सानियत है । हमें-जातिसेवा का धर्म ग्रहण करके अपनी खोई हुई योग्यता फिर हासिल

करनी चाहिये। दौलत वग़ैरह लौंडियां हैं जो पीछे आती रहेंगी। ख़िदमत करके नाम पैदा करने वाला उससे बेहतर है जो दौलत से नाम पैदा करे। चाहे मामूली मकानों में सादगी के साथ रहो लेकिन क़ौमी भाव अवश्य प्रकट करो। ऐसे समय में जब कि हिन्दू जाति के बच्चे उस से अलग हो रहे हैं हमारे ऊपर कुछ कर्तव्य का भार है। हमारी जाति में गौतम और भीष्म सरीखे महापुरुषों ने जन्म लिया है, अगर हम उनके वंशज हैं, अगर हम में उन्हीं का खून है तो हमारे अन्दर यह विश्वास होना चाहिये कि फिर वैसे ही पुरुष पैदा होंगे। क्या अंगरेज़ी तालीम ने हमारा वह खून नष्ट कर दिया?

अन्त में मुझे यही कहना है कि यह अछूत जातियों का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। केवल सुन कर ही न रह जाओ किन्तु इस की सफलता के लिए चेष्टा करो। वही ईश्वर हमारी सहायता करेगा जिसने पिछले समय में हमारे संकट दूर किये हैं।"

वास्तव में लाला जी की इस अलौकिक प्रतिभाशालिनी वक्तृता का अक्षर २ गूढ भावों से भर पूर है. इसके पश्चात् अब भारत के चमकते हीरे स्वर्गस्थ माननीय गोपाल कृष्ण गोखले के भी स्फुट विचार सुनिये.

"पतित जातियों की (हा! उनके प्रति "पतित" शब्द प्रयोग

अधमोद्धार *अर्थात् स्वर्गस्थ माननीय गोखले के सुन्दर विचार.

करने में हमें दुःख होता है) दशा बड़ी ही असन्तोषदायक है। वह इतनी शोकमय है कि हमारे समाजसंगठन पर बुरी तरह धब्बा लगा रही है. इनके साथ लोगों का व्यवहार बहुत ही बुरा अमानुषिक एवम् स्वार्थयुक्त है। मैं आज इस विषय पर मनुष्यत्व, न्याय तथा जातीयस्वार्थ को दृष्टि-पथ में रख अपने विचार प्रकट करना चाहता हूं। जिन लोगों के मस्तिष्क विचार सकते हैं, जिनके हृदय भावों को अनुभव कर सकते हैं उन्हें स्वार्थवश सब प्रकार की उन्नतियों से रोक कर पतितावस्था में पड़े रहने के लिये बाध्य किया जाय यह बड़े ही दुःख की बात है। ऐसा करना हमारी न्याय-बुद्धि के सर्वथा प्रतिकूल है। बिल्ली, कुत्तों को हम बड़े आनन्द से स्पर्श कर सकते हैं परन्तु अपने भाईयों के साथ ऐसा करने में संकोच से काम लिया जाता है। समाज के अत्याचार से ये जातिजां इतनी गिर गई हैं कि अपने प्रति दुर्व्यवहार देख उन्हें कभी दुःख ही नहीं होता।

कभी कभी लोग कहने लगते हैं कि यह जातिभेद सब देशों में मौजूद है। ऊंच नीच का सब जगह विचार किया जाता है। क्या विलायती लोग इससे बचे हुये हैं ? उनका यह कथन किसी अंश

* माननीय श्रीयुत गोखले द्वारा " धाड़वाड़ समाज सुधारक कान्फ्रेंस " में दी हुई वक्तृता का अनुवाद। आ. १०-५-१७.

में ठीक है परन्तु यदि वे तनिक भी विचार करें तो उन्हें ज्ञात होगा कि पाश्चात्य देशों में इस ' भेद, की मात्रा बहुत ही न्यून है। वहां इस देश की तरह वह कठोर तथा शृंखलाबद्ध नहीं। श्रीयुक्त चेम्बरलेन महाशय बिलायत में महान् पुरुष समझे जाते हैं। वे किसी समय चर्मकार तथा कारखानों में कार्य्य करने वाले साधारण मजदूर थे। परन्तु आज अपनी विद्या बुद्धि के कारण राजपरिवार के साथ बैठकर खाना खाते हैं। देश के बड़े लोगों में समझे जाते हैं। क्या भारतवर्ष में किसी विद्वान् सुयोग्य चर्मकार के लिये इस प्रकार सामाजिक उन्नति करना सम्भव है ? किसी लेखक ने ठीक कहा है कि—' जातिभेद किसी जाति की रक्षा के लिये भले ही लाभदायक हो, परन्तु उसकी वृद्धि और उन्नति के लिये महा-बाधक है।, यदि आप चाहते हैं कि जिस दशा में हम हजार वर्ष पूर्व थे उसी में अब भी पड़े रहें तो जातिभेद को दूर करने की आवश्यकता नहीं। और यदि आपको पुरानी अवस्था से पीछा छुड़ाकर उन्नतिक्षेत्र में अवतरित होना है तो जातिभेद के भयङ्कर भँवरो से निकलने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

मनुष्यत्व के साथ ही साथ, पतितोद्धार का जातीय जीवन से भी बहुत कुछ सम्बन्ध है। जाति का स्वार्थ इन लोगों की उन्नति-पर भी अवलम्बित है। अपने देशवासियों की इतनी बड़ी संख्या के मूर्ख, असभ्य और पतित होते हुये हम किस प्रकार अपनी अभि-लाषाओं की पूर्ति कर सकेगें यह बात समझ में नहीं आती। यदि

हम पतित कहलाने वाली जातियों को सुशिक्षित न बनायेंगे, उनके साथ सद्व्यवहार न करेंगे तो वे कदापि हमारी बात समझने के योग्य नहीं हो सकतीं । और न हमें किसी प्रकार की सहायता दे सकती हैं । जातीय–उत्थान में इन लोगों से जो सहायता मिल सकती है आज उससे देश वंचित है उनकी शक्ति का दुरुपयोग हो रहा है। जबतक सब जातियां नीच जातियों सहित हमारी सहायता न करेंगीं तब तक मेरे विचार में हमें अपने कार्यों में सफलता की आशा न रखनी चाहिये।

क्या यह जातीय सम्मान के अनुकूल है कि जब तक हिन्दू धर्म को मानते रहें तब तक ये लोग हमारे घरों में प्रवेश न कर सकें–सामाजिक व्यवहारों में सम्मिलित न हो सकें। परन्तु जब वे कोट पतलून और टोप धारण कर अपने को क्रिस्तान कहलाने लगें तो वे हाथ मिलाने और बराबर बिठाने के योग्य समझे जावें। क्या कोई भी विचारशील सज्जन हमारे इस अनौचित्यपूर्ण दुर्व्यवहार से सन्तुष्ट हो सकता है?

प्यारे भाइयो, पतितोद्धारक बनो। मेरी सम्मति में इससे उत्तम दूसरा कोई कार्य्य नहीं है। शिक्षित समुदाय का उत्साह बढ़ाने तथा परमार्थ के भावों से पूर्ण करने के लिये समाज-संशोधन-सम्बन्धी कोई कार्य्य हो सकता है तो निःसन्देह वह अधमोद्धार है। क्या विश्वविद्यालयों में से निकले हुए पांच, चार, तीन, दो या एक ही

प्रतिशतक सही—ऐसे नवयुवक नहीं है जो इन जातियों के सुधारने के लिये अपना जीवन अर्पण कर दें ? मेरी प्रार्थना उन वृद्ध या प्रौढ़ पुरुषों से नहीं है जिनके जीवनोद्देश निश्चित हो चुके हैं। प्रत्युत उन सुशिक्षित नवयुवकों से है जिन्हें अभी अपना कार्य–क्रम निश्चित करना है। तथा जो देश और जातिसुधार की उच्च आकांक्षायें रखते हैं। आजकल सबसे बड़ी आवश्यकता इस बात की है कि हमारे नवयुवकगण आत्मसमर्पणपूर्वक जातिसेवा के लिये तय्यार हों। मुझे विश्वास है कि ये सुशिक्षित तरुण अभागिनी नीच जातियों के सुधार की ओर पूर्णरूप से दत्तचित्त होंगे। उनको सुशिक्षित बनाते हुए समाज का सुधार तथा देश का उपकार करेंगे"। पाठक ! यह वक्तृता संक्षिप्त होते हुए कितने मार्कें की और सुविचारों से पूर्ण है सो विचारिये.

लोकमान्य तपस्वी गान्धी जी के विचार.

हिन्दूविश्वविद्यालय के शिलान्यास के समारम्भ के पश्चात् तपोनिष्ठ कर्मप्रवीर श्रीयुत मोहनदास कर्मचंद गांधी बैरिस्टर एटलॉ जब मद्रास में फेब्रुवरी सन १९१६ के द्वितीय सप्ताह में पधारे थे तब वहां के 'यंगमेन्स क्रिश्चियन एसोशियेशन' की ओरसे आपने अनेक आवश्यक महत्व के विषयोंसे भरपूर एक ओजस्विनी वक्तृता दी थी. उसमें आपने पतितोद्धार के संबन्ध में यह शब्द कहे * "अस्पृश्य

* मराठी दैनिक 'संदेश' ता. २०–२–१६.

वर्ग के सम्बन्ध में भी हमें एक प्रतिज्ञा करनी पड़ती है; अस्पृश्यत्व की कल्पना अनादि काल से हम में नहीं चली आई और जब तक हम उसे हृदय से लगाये रहेंगे तब तक अपनी प्रत्येक प्रकार की अधोगति भी अपरिहार्य ही है "

विचारशील पाठक ! आदर्श पुरुषों की यह सम्मतियां आप की विचारशक्ति को गति देने में क्या पर्य्याप्त से अधिक नहीं ? न्यायदृष्टि और परिस्थिति के विचार से छाती पर हाथ धर कर मन में एक क्षण को तो कृपया उदार भाव आने दीजिये.

इस ' लोकमत ' के पश्चात् अब अगले भाग में हम आप के सम्मुख कुछ रूढि सम्बन्धिनी विशेष प्रकार की चर्चा करेंगे.

(विवेचन और लोकमत समाप्त)

रूढि.

अपि चेत् सुदुराचारो, भजते मामनन्यभाक्।
साधु रेव स मन्तव्यः, सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥

यदि महा दुराचारी भी अनन्यभक्त होकर मुझे भजता है तो उसे साधु (उत्तम) ही समझना चाहिये क्योंकि उसने उत्तम निश्चय किया है।

भगवद्गीता.

सुज्ञ पाठक ! जब कभी हम पर्यटन करते हुए किसी अज्ञात दूर प्रदेश में पहुंचते हैं तब मानवस्वभावजन्य इच्छा से किसी आश्रय को ले कर विश्रामप्राप्ति का उपायचिन्तन करते हैं. इस स्वाभाविक नियम से सहायप्राप्ति का भिक्षुक रंक से राजा तक होता है, ऐसी उपाय चिन्तन स्थिति में एक कष्टापन्न हिन्दू को कोई मसजिद के बदले 'धर्मशाला' या 'मन्दिर' का मार्ग बता दे तो इन शब्दों के कान में पड़ते ही उस के जान पड जाती है. उस के दिल में खुदाबख़्श की हवेली की जगह रामलाल के छप्पर का मकान अधिक ठंडक डालता है. हुसेनीगली, लूथरगंज इन मुहल्लों की जगह किसनपुरा और गूजरटोले का पता लगने पर उस के पैर आगे को जल्दी उठते हैं. शाही गुसलखाने की जगह रामदास का कुआ उस के मन को आमोद

देता है. यदि उस हिन्दू मुसाफ़र के कान में उस दशा में कहीं शंखध्वनि आ पड़े तो वह ध्वनि उसे आकर्षित करती है. मुल्लां की अज़ां उसे मीठी नहीं लगती. यदि किसी चौपाल पर से यज्ञ होते हुए मन्त्रोच्चारण वह सुनेगा तो वहां एक दम प्रविष्ट होने का साहस कर बैठेगा. रामनवमी और कृष्णजयन्ती उस के जान जान डाल देगी. वह प्यासा हिन्दू कुए पर–गंगासागर जिस के हाथ में हो उसके पास–अपना सा घर समझ चला जायेगा. मूंछे कटी हुई हैं, दाढी लंबी है. ऐसे आदमी के पास उसे अधिक काल बैठना भार हो जायेगा. " सलाम " उसे इतना मधुर नहीं लगेगा जितना कि ' रामराम '. प्रश्न होता है कि ऐसा क्यों ? वाचक वृन्द ! यह सब उस के आत्माकी अनुकूलता का व्यापार है. जिस जनसमाज में उस के भाव बने, जिस विधिसे युक्त काम उसके देखने में आये वेही उसे अच्छे लगते हैं. उन समाज के कार्यों को ही हम रिवाज, रीति, रूढि शब्दों से पुकारते हैं. वे रीति रिवाज धर्मकृत्य हैं. समष्टिकर्त्तव्य होने से वे सर्वतंत्र सिद्धान्त कहे जाते हैं. वे ही कर्तव्य जब हम एक व्यक्ति, एक परिवार, एक जाति और एक देश में पाते हैं तब हमारा अनुमान हमें विश्वास दिलाता है कि यह अमुक जनसमाज के अंगीभूत व्यक्ति हैं. एक मुसल्मान अपने रीति रिवाज वाले समुदाय को प्राप्त कर बडा आनन्द मानता है, एक ईसाई भी वैसे ही. क्या यह आवश्यक नहीं कि एक हिन्दू भी

अपनेसे रीति रिवाज वाले समुदाय को पाकर जोश न खाये और उस समुदाय के व्यक्तियों से हृदय न मिलाये ? रीति रिवाजों का तारतम्य इतना घनिष्ठ और सुरम्य है कि वह ऐतिहासिक संग्रह का एकमात्र साधन कहा जाता है, किसी भी जनसमुदाय के सम्बन्ध में बारीक अन्वेषण के लिए इस से उत्तम मसाला नहीं हो सकता, हां तर्क और ऐतिहासिक ग्रन्थ इस के प्रतिक्षण साथी बनाने पड़ते हैं, क्योंकि परिवर्तनशील काल इसे अनेक प्रसंगों पर अपना परिवर्त्तित रूप देता रहता है. उदाहरणतः--आज सैंकडों वर्षों के व्यतीत होने पर भी यह जानना मुश्किल नहीं कि हिन्दुओं में से मुसल्मान बनाये हुए कौन से जनसमुदाय हैं. भारतवर्षकी एक सीमासे दूसरी सीमा तक कहीं भी जाइये रीति रिवाज इस समस्या का समाधान बडी सरलता से करते जायेंगे. अभी तक काबल के मुसल्मानों में भी राजपूत की अटक मौजूद है, भारत में हज़ारों मुसल्मान परिवारों में विवाहविधि का लगभग आधा भाग ब्राह्मणों के हाथों होता है, और तो और मुसल्मान हो कर भी (हमारे भाग्य से) उन का नाम रामसिंह, भगवानसिंह, भूपतसिंह चला जाता है. इस खोजका लगना रीति रिवाज को महान् श्रेय दिलाता है, अस्तु. ये लोग तो खुल्लम खुल्ला हिन्दू धर्म का त्याग कर ही चुके, और शोक से कहना पड़ता है कि हिन्दू धर्म के शास्त्र शास्त्रियों के घर का बोझ ही रह गये. शास्त्रियों की विद्या, व्रत, प्रायश्चित्तविधि आदि कर्मकाण्ड सब स्वप्नवत् ही रहे, परन्तु

इस से बढ़कर और क्या बदनसीबी की बात होगी कि जिन भाइयों को जबरन् नीचता की पदवी स्वीकार करनी पडी उन्हें अब तक "हम हिन्दू हैं हम हिन्दू हैं" कहते हुए भी धक्के देकर घर से निकाला जा रहा है, और वह नीच कहला कर भी अपने प्यारे सनातनधर्म को नहीं छोडते. बड़े २ कष्टों के आने पर, संसार की बड़ी बड़ी विभूतियों के सवेग आक्रमण होने पर भी वह धीर नर आप से नीच माने हुए अत एव अपने हिन्दुसमाज के लेशमात्र आश्वासन और सहानुभूति से वञ्चित रहते हुए भी अपने प्रिय हिन्दु धर्म को नहीं छोड़ते परन्तु आखर यह धैर्य कहां तक ??? सज्जनो ! कितनी शाबाशी के वह पात्र हैं, कितना उन का स्वावलम्बन है, कितने वह क्षमाशील हैं. उस चित्र को आप के सम्मुख रखना उचित होगा, और इस के लिए आज पतित माने हुए लोगों के रीति रिवाजों का कुछ दिग्दर्शन कराना आवश्यक होगा।

यह तो अब प्रत्यक्ष ही है कि इन्हें हिन्दुत्व के गीत गाते हुए भी हिन्दु जनसमाजने अपना अंग नहीं माना, पास बैठने, मेले, देव-मन्दिर और कथादि प्रसंग, किसीमें भी यह सम्मिलित नहीं किए गये अर्थात् पृथक् या बहिष्कृत करने में कोई कसर नहीं की गई और ऐसी दशा में भी वह अपने प्रिय हिन्दुधर्म को टूटी फूटी हालत में अपनी शक्ति के अनुसार पालते रहे, इस से बढकर उनके धन्यवाद का और कौन सा अवसर होगा. पर देखिये कि ऐसी निस्सहाय स्थिति

में उन्हों ने धर्म का आचरण भी कैसा किया. यदि यह कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी कि " **धर्मो नित्यः सुख दुःखे त्वनित्ये** " इस वचन को इन्हों ने सार्थक ही कर बताया. जितनी खोज लगी है उस से इसी अनुमान पर इतिहासवेत्ता ठहरते हैं कि यह पतित माने हुए लोग प्राचीन काल में क्षत्रिय वर्णस्थ थे. परन्तु एक और बड़ी ही आश्चर्यजनक नवीन खोज और लगी वह यह कि इन भूतपूर्व क्षत्रियों के पतन के समय इन के गुरु पुरोहितों ने आपद्धर्मनुकूल इन का पूरा साथ दिया. एवं कुछ साधु सन्तों ने भी. परन्तु समय के प्रभाव से अपने यजमानों के समान इन्हें भी हिन्दु समाज के धिक्कार, बहिष्कार और छूत-छात का फल चाखना ही पड़ा और इनकी भी गिनती अन्त्यजों में ही हो गई. जैसे ' चमार ' को अधिक अपमानित कर ' चमरा ' या चमट्टा ' सम्बोधन किया जाता है वैसे ही इन का साथ देने-वाले ब्राह्मण ' गुरू ' को गुरूड़ा और गुरूडा से गरूडा या गरोडा संज्ञा अपभ्रष्ट होती हुई प्राप्त हो गई और यह गरोड़ा एक जाति-विशेष हो गई; ' कोयलों की दलाली में हाथ काले ' इस जनोक्ति के अनुसार अन्त्यज यजमानों तक ही इन गुरूडा ब्राह्मणों की आजीविका और व्यवहार की सीमा रह गई. यह जाति प्रायः गुर्जर प्रान्त में ही पाई जाती है. गुजरात में अस्पृश्यों और उन का साथ देने वाले ब्राह्मण गरोडाओं के जो रीति रिवाज

और संस्कार आदि आज कल भी उन में प्रचलित हैं वह हम इस प्रसंग पर आप के सम्मुख रखना उचित और आवश्यक समझते हैं. प्रथम इन की विवाहविधि पर ही दृष्टिपात कीजिये. उन की यह विवाहविधि कुछ पृष्ठों के फटेटूटे कागज़ों पर हाथ से 'गरोडिया भाषा' में लिखी हुई प्रायः इन पुरोहितों के यहां रहती है. इस ' हस्तलिपि ' को यह 'हस्ताली' कहते हैं अर्थात् हस्तलिपि से अपभ्रष्ट हो कर 'हस्ताली' शब्द हो जाने का अनुमान होता है. भिन्न स्थलों के इन पुरोहितों की इस हस्ताली में बहुत सा पाठभेद है, हमें हस्तलिखित के अतिरिक्त दो भिन्न प्रतियां मुद्रित भी प्राप्त हो सकीं हैं. इन सब पर दृष्टि डाल कर नीचे लिखी हुई चार मंगलात्मक हस्ताली अन्यों से अधिक शुद्ध समझ कर हम ने आप के सन्मुख रक्खी है और उस के सामने अर्थ और शब्दरूप को दृष्टि में रखते हुए उस का संस्कृत भाषा में संस्क रण में भी रक्खा है, इसी प्रकार इन के अन्य कई स्तोत्रादि भी गुजराती, हिन्दी, आदि भाषाओं से मिश्रित इन का पूर्ण हिन्दुत्वाभिमानी होना प्रकट करते हैं. हस्ताली के अनन्तर उस पर कुछ विवेचन करना उचित समझा है. जिस से यह स्पष्ट सिद्ध होगा कि इतनी असहाय अवस्था में भी इन्हों ने अपने संस्कारों की क्रिया में वैदिक सनातन रूप को यथाशक्ति नहीं छोडा. धन्य हो श्रद्धालु गरोडा ब्राह्मणो ! यदि तुमने संस्कारों का यह मसाला गरोडिया भाषा में न रक्खा होता तो हम किस मुंह से और किस नाते इन पतितों को आज हिन्दूसुत कह सकते.

हस्ताली (हस्तलिपि)

(अन्त्यजों के गुरुओं की विवाहपद्धति)

हस्ताली की वर्त्तमान भाषा	हस्ताली का संस्करण
१ स्री गणेसायनमा	श्रीगणेशाय नमः
२ गुरु मात पितायेनमा	गुरुमातापितृभ्योनमः
३ सरस्वतियेनमा	सरस्वत्यै नमः
४ शिषयोनाथंग	शेषोनाथः
५ प्रशादेकथं ते प्रभू	प्रसादं कथंयति प्रभोः
६ त्री लोके भवे सुखंग	त्रिलोके भवेत् सुखं
७ वर कन्या परणीता वेद मंगली	वरकन्ये परिणीते वेदमंगल्यै।

(हस्ताली का हिन्दी भाव)

प्रथम मंगल. श्री गणेशजी को प्रणाम हो । गुरु और माता, पिता को प्रणाम हो । विद्यादेवी को प्रणाम हो (इस प्रसंग पर हव्य का होम कर बोध दिया जाता है) प्रसादी जैसा आनन्द हो । तीनों लोकों में सुखी होओ । इस प्रकार वेद के कथनानुसार कर्म करने से सदा आनन्दी होओ । गणेशजी का दोष निवारण करना चाहिये । [वर कन्या से तिल, जौ हुतवा कर नीचे लिखे अनुसार पढते हैं " सुंढाळा दुःखभंजन गौरी पुत्र गणेश, प्रथम समरुं आप को दो बुद्धि परमेश"] ब्रह्मा सदा आनन्दी होओ. रजोगुणी सृष्टि के नाश करने वाले विष्णु, तमोगुणी सृष्टि के नाश करने वाले महादेवजी, यह तीनों देव

८ गुणपति दोषनिवारणं	गणपतेः दोषनिवारणम्
९ आनन्दी भवेत ब्रह्मा	आनन्दी भवेत् ब्रह्मा
१० भावादी विष्णु एवचे	भवादिः विष्णुरेवच
११ जयादिसंकर प्रोकता	जयादेःशङ्करः प्रोक्ता
१२ त्री देवे सृष्टिपालन नाशका	त्रिदेवाः सृष्टिपालननाशकाः
१३ एत देवे वर कन्या पर्णीता वेद मंगली	एते देव ! वरकन्ये परिणीते वेद-मंगल्यौ
१४ बृहस्पति दोषनिवारणंग	बृहस्पतिदोषनिवारणम्
१५ चोरी चोखंडी अं ए	चारु चरुचतुष्कोणिके (वेदी)
१६ क्षीरसागर मनोवृत्तेका	क्षीरसागरमनोवृत्तिके
१७ लक्ष्मी विष्णू समाजगतम्	लक्ष्मीविष्णुसमे जगत्याम्
१८ हस्त मेलापतम्	हस्तमेलनम्
१९ वेद उच्चार्णंग	वेदोच्चारणम्

उत्पत्ति, पालन, और विनाश करने वाले हैं। वेद के कथनानुसार इन देवों का पूजन कर के वर कन्या विवाह करने से आनन्द पाते हैं। बृहस्पति (गुरु) का दोष निवारण करना। [कनिष्ठ गुरु हो तो पूजन किया जाता है, सवा गज पीला कपडा और इस पर सवासेर चने की दाल अथवा चने रक्खे जाते हैं। एक श्रीफल (नारियल), सवा सेर शक्कर, इतनी सामग्री की आवश्यकता होती है फिर वर कन्या से तिल जौ हुतवाकर निम्नप्रकार ब्राह्मण बृहस्पति की स्तुति करता है " बृहस्पति भवमंडले, सद्य आपो संकट टाली इत्यादि. "] चौरी की रचना चौकोनी होनी चाहिये। समुद्र की लहर जैसे अपने ही में

२० चत्रुमुख ब्रह्मेबचनंग	चतुर्मुखब्रह्मवचनम्
२१ कहेत कल्यानम	कथयन्ति कल्याणम्
२२ ब्रह्म ओछवंग	ब्रह्मोत्सवः
२३ प्रथम मंगल प्रसुधनं	**प्रथमं मंगलं प्रसिद्धम्**
१ पशुवर गौपवित्रम	पशुवर्गे गौः पवित्रा
२ पूज्मवरतमा भवोभत्रे	पूज्यवरतमाया भवो भवेत्
३ वेद पवित्रं विप्र	वेदपवित्रो विप्रः
४ संसार पुण्य पवित्र	संसारः पुण्यपवित्रः
५ ज्ञानपवित्र योगेश्वरा	ज्ञानपवित्राः योगीश्वराः
६ ईते पवित्रो वर कन्या- परणीता वेद मंगळी	एते पवित्रे वरकन्ये परिणी– ते वेदमंगल्यौ

समाती है तैथव वर कन्या की मनोवृत्ति रहो । इस जगत् में लक्ष्मी और विष्णु का सा सम्बन्ध तुह्मारा रहे ॥ हस्तामिलाप ॥ ऐसा वेद का कथन है। चार मुख वाले वेद के प्रमाण से कल्याण होने को कहते हैं. ऐसे ब्रह्मोत्सव होने से प्रथम मंगल की समाप्ति होती है

द्वितीय मंगल. पशु वर्ग में गौ पवित्र है. इस के पूजन से जीवन सुधरता है । वेद पढे ब्राह्मण को पवित्र मानना चाहिये । संसार पुण्य से पवित्र हो । ज्ञान से योगी लोगों को पवित्र समझना चाहिये । वेद कहते हैं कि इतनी पवित्रता से यदि वर कन्या विवाह करें तो आनन्दित रहते हैं “ ग्रह के दोष को शान्त करना । [यह दोष मिटाने के लिये वर कन्या के हाथ में तिल, जौ और सुपारी दे कर निम्नप्रकार पुरोहित पढता है “रवये नमः, सोमाय नमः इत्यादि”

७ ग्रहेदोश नीवारणंग	ग्रहदोषनिवारणम्
८ फोफर पान मुखवासो अंचे	पुष्पपत्रमुखवासैरञ्चेत्
९ ध्रुव स्थीर बर कन्या कर्मे	ध्रुवस्थिरम् वरकन्याकर्म
१० चतुर्थ दाने वर कन्या ब्रह्म स्मरपणम वेद मंगला	चतुर्थे दाने वरकन्येब्रह्मसमर्पणं (कुरुतः) वेद मंगल्यौ
११ क्षेत्रपाल दोश निवारणांग	क्षेत्रपालदोषनिवारणम्
१२ ब्रह्म अदव ब्रह्म सहितंग	ब्रह्मादयो ब्रह्मसहिताः
१३ वर कन्यासमा द्रष्टी विलो-कनंग	वरकन्यासमदृष्टिविलोकनम्
१४ पान धारणंग	ताम्बूल धारणम्
१५ वेद उच्चारणं	वेदोच्चारणम्
१६ चत्रुमुखे वचने सफलम्	चतुर्मुखवचनं सफलम्
१७ कलीरव करतवंग	कलिरवः कर्तव्यः

मुखवास पान सुपारी से (हवन कर के) (देव पूजन) करना

ध्रुव तारा जैसे अचल रहता है वैसे वर कन्या का सम्बन्ध अचल रहे । वेद कहते हैं कि चौथा दान ब्राह्मण को समर्पण करने से कल्याण होता है। क्षेत्रपाल को शान्त करना चाहिये । पान लेना ब्रह्मादि की कृपा से वर कन्या की दृष्टि सदा उत्तम रहे। वेद कहते हैं कि चारों वेदों के ज्ञाता के मुख के आशीर्वाद से शैतान (कलि) का नाश होता है. वर कन्या समयानुकूल वर्तन से स्वयं सदा सुखी रहते हैं । जगत् में समान रहें. । इस प्रकार दूसरे मंगल की समाप्ति होती है ॥

१८ समोवर्त्ते भवेसुखंग	समवर्त्तने भवेत्सुखम्
१९ समा जगतंग	समे जगत्यां
२० ब्रह्मओच्छवंगः	ब्रह्मोत्सवः
२१ बीज मंगळ प्रसुधनंग	**द्वितीयं मंगलम् प्रसिद्धम्**
१ त्रीगुणातित देवाये नमः	त्रिगुणातीतदेवाय नमः
२ ओम व्यापक पुरुषे नमः	ओं व्यापकपुरुषाय नमः
३ सर्व दिशा नमं सूर्य नमाहा	सर्वदिग्भ्यो नमः, सूर्याय नमः
४ संवत्सेर शुभमवृत्ते	संवत्सरः शुभम्वर्त्तताम्
५ अंगस्थितिभवेसुखमं	अङ्गस्थितौ भवेत्सुखम्
६ वर कन्या परणीता वेद मंगलीक	वर कन्ये परिणीते वेदमंगलयौ
७ योगणी दोश नीवारणम	योगिनीदोषनिवारणम्
८ प्रथम सकितकष्ट सह माताये नमः	प्रथमशक्तिकष्टसहमात्रेनमः
९ चन्द्रसम मन सीतता देह	चन्द्रसमां मनःशीतलतां देहि (प्रभो !)
१० सावंत्री सहीतंग ब्रह्मदेह	सावित्री सहितं ब्रह्मन् देहि सदा

तृतीय मंगल. तीनों देवों को नमस्कार । सर्वोपरिव्यापक पुरुष को नमस्कार । सर्व दिशाओं तथा व्यापक सूर्य को नमस्कार । सम्वत्सर की ऋतु समझ कर सुखी होओ और अंगकी स्थिति उत्तम बनी रहे । वेद कहते हैं कि वर कन्या विवाह करने से सदा आनन्द में रहते हैं [निम्न प्रकार योगिनी की स्तुति कर के दोष निवारण किया जाता है । " समरूं देवी सारदा इत्यादि......]

तंग सदा सुखंग भवे	सुखं भवे (संसारे)
११ वेद उच्चारणंग	वेदोच्चारणम्
१२ कलीरव करतवंग	कलीरवः कर्त्तव्यः
१३ विघन नाशतंग	विघ्नाः नश्यन्ताम्
१४ ब्रह्म ओछवंग	ब्रह्मोत्सवः
१५ त्रीजु मंगले स्वाहा	**तृतीय मंगलाय स्वाहा**
१ वर कन्या नमो प्रतिबन्धे	वर कन्ययोः प्रतिबंधः
२ वर कन्या कंशार भोजनमे	वर कन्या यै कंसार भोजनम्
३ जल पान पय पीवता पवित्रो	जलं पिबन्तौ पवित्रौ
४ वर कन्या परणीता वेद मं-गलीक	वर कन्ये परिणीते वेदमंगल्यौ
५ संसार दोष निवारणांग	संसारदोषनिवारणं
६ वर कन्या अचलं स्वाहा	वरकन्ये अचले स्वाहा
७ सुभ प्रजा प्रसुते स्वाहा	शुभप्रजाप्रसूतये स्वाहा

प्रथम योगिनी माता को शक्ति हर ने वाली समझ कर नमस्कार करना । चन्द्र समान शीतल मन रख कर सावित्री के साथ ब्रह्मा की भांति सदा सुखी होओ । वेद का कथन है कि कलि पाप का नाश हो । सर्व विघ्न नष्ट हों । ब्रह्मोत्सव (वेद का उत्सव) करने से तीसरे मंगल द्वारा कल्याण हो ।

चतुर्थ मंगल. वर कन्या प्रतिज्ञा करें । फिर वर कन्या परस्पर एक दूसरे के हाथ से मिष्टान्न भोजन करें फिर पानी पीवें इस प्रकार वर और

८ धन धान्य प्रवते स्वाहा	धनधान्यं प्रवर्धताम् स्वाहा
९. अनुसुया समवृत्ते स्वाहा	अनसूया समवृत्ते स्वाहा
१० सीतासावित्रीनिष्टेवर्त्तो स्वाहा	सीतासावित्रीनिष्ठया वर्त्तताम्
११ लक्षमीपार्वतीसमव्रत्ति स्वाहा	लक्ष्मी पार्वतीसमवृत्तिः भवेत्
१२ पुरुषायेभवेक्रुष्ण रामे स्वाहा	पुरुषो भवेत् कृष्णः रामः स्वाहा
१३ हस्त मेलापतंग	हस्तमेलनम्
१४ पान धारणंग	पान (ताम्बूल) धारणं
१५ ब्रह्म ओछवंग	ब्रह्मोत्सवः
१६ चतुर्थ मंगळ सम्पते स्वाहा	**चतुर्थमंगलं समाप्तम् स्वाहा**

कन्या विवाह करने से–वेद कहते हैं कि–आनन्दी होवें। संसार दोष निवारण करने के लिये आशीर्वाद बोला जाता है। वर कन्या अचल दीर्घायु हो कर कल्याणयुक्त हों. शुभ प्रजा उत्पन्न कर आनन्दित हों. धनधान्य से कल्याण हो। अनसूया, सीता, और सावित्री के समान कन्या की दृष्टि रहे। और लक्ष्मी, पार्वती के समान व्रत्ति हो। वर श्रीराम और श्री कृष्ण जैसा हो। हस्तामिलाप करना। इस प्रकार ब्रह्मोत्सव करने से चौथे मंगल से तुह्मारा कल्याण हो। हस्ताली भाव समाप्त.

टिप्पणी:—हस्त लिखित तथा मुद्रित हस्ताली में पंक्ति, वाक्य, शब्द और अक्षरों तक का पारस्परिक सम्बन्ध लेखन शैली के दोषों से पूर्ण होने से एवं विरामादि चिन्हों के अभावसे प्रथम तो शब्दों के समझने में ही काठिन्य स्वाभाविक था उस पर भी विषय क्रम विरुद्धता से भाव निकलना भी दुष्कर हुआ, तौ भी यथासम्भव घटित शब्द और सम्बन्ध का शोधन किया है.

(लेखक)

हस्ताली में वैदिक विधिकी साफ झलक.

हस्ताली में केवल मंत्रों के ही प्रतिनिधि शब्द नहीं किन्तु विधि आदि वाक्य भी हैं जैसेः– संख्या २० 'चतुर्मुख वचनं' वेदोच्चारणं अर्थात् अमुक वचन ब्रह्मा बोले * वेदोच्चारण करे. यद्यपि यह विधिवचन से बाहर ऊपर की बात है तो भी हस्ताली में लिख दी गई है. इसी प्रकार संख्या २३ में ' प्रथमं मंगलं समाप्तम् ' ऐसे वाक्य भी मंत्रवत् लिख दिये गये हैं. तीसरे और चोथे मंगल की समाप्ति के ही वाक्य पर स्वाहा लगा दिया गया है. वाक्य संख्या १५ में वेदों की रचना का विधान है, यद्यपि यह संस्कार सम्बन्धी विधिवाक्य नहीं. इसी प्रकार और भी क्रमहीनतादि दो एक दोष हैं, परन्तु देखना यह है कि हस्ताली जो विवाह विधि करके प्रसिद्ध है उस में वैदिकविवाहविधि–जो हिन्दूजनता में प्रचलित है उस–के भी कोई चिन्ह या रूपान्तर मूल रूप से पाये जाते हैं या नहीं, ? वह हम वैदिक पद्धति के मन्त्रों से मुकाबला करते हुए पाठकों के भेट करना आवश्यक समझते हैं. स्तुति, मंगलाचरण, आचमन, मधुपर्क, परिक्रमा, आशीर्वाद, दानदक्षिणा, ध्रुवाऽवलोकन, सप्तपदी, शिलारोहण, ग्रन्थिबन्धन और मुख्य पाणिग्रहण इत्यादि जो २ क्रियाएं वैदिक पद्धति में पाई जाती हैं वह सब संकेत रूप से इस हस्ताली में

* ब्रह्मा प्रायः सब वैदिक यज्ञों में अधिपति और ऋत्विक् आदि को यज्ञकार्य का आदेश देने वाला होता है.

पाई जाती हैं, 'ओं' और ' वेद का उच्चारण ' करना ही जब इस में बारंबार लिखा है तो फिर इन के वेदोपासक होने में क्या कसर है.

वर कन्या को राम और सीता समान होने का उपदेश है, जैसा कि एक वार काशी के विद्वन्मुकुट महामहोपाध्याय श्रीयुत शिवकुमार जी ने इन लोगों के विषय में अपने भाषण में कहा था. हिन्दु जाति गौ को अति पवित्र (उपकारी) प्राणी मानती है, वह दूसरे मंगल के आरम्भ में ही खुलासे से लिखा है. इस से बढ़ कर इन लोगों के हिन्दुत्वाभिमानी होने में क्या प्रमाण चाहिये ? यद्यपि यह हस्ताली गरोडिया भाषा में है और गरोडा अपने को अन्त्यज ब्राह्मण कहते हैं और अपने संस्कार टूटी फूटी दशा में कर लेते हैं परन्तु ' वेदपवित्रो ब्राह्मणः, ' हस्ताली के इस वचनानुसार ' वेद ' और ' ब्राह्मणों ' का महत्व इन्हों ने बहुत उत्तम रीति से झलकाया है. यों तो आज हमारे उच्च जातीय ब्राह्मणों में भी विधि पद्धतियों के भाव और उद्देश यथावत् जानने वाले और मन्त्रोच्चारण शुद्ध करने वाले विरले ही मिल सकते हैं, नहीं तो वही ' सहस्रशीर्षाः पुरुषाः ' को ' सहस्र खीर खा पूरी खा ' ही करने वाले प्रायः सर्वत्र देख लीजिये. सारांश यह कि प्राचीन वैदिक रीति के सब शुभ कार्यों और संस्कारों में मंगल प्राप्ति के लिए ' स्वस्तिवाचन ' शान्तिपाठ आदि जोर आरम्भ में किया जाता है एवं चतुष्कोण वेदी और ब्रह्मा की स्थापना

यज्ञ में आवश्यक होती है, 'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्' यह श्रद्धेय वचन हिन्दु प्रजा में प्रायः बोले जाते हैं. वह२ सब हस्ताली में भी विद्यमान है. वैदिक धर्मानुयायी इस सृष्टि की उत्पत्ति और नाश होना मानते हैं (यद्यपि अन्य कितने ही मत वादी ऐसा नहीं मानते), वर कन्या का पाणिग्रहण 'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्:—इत्यादि ६ मंत्रों से प्रसिद्ध ही है. सो यह सभी बातें इस में बीजरूप से स्थित हैं. नीचे हमने स्पष्टता से विधि का रहस्य समझने के लिए हस्ताली से वैदिकविधि की समानता का दर्शक कोष्ठक दिया है. हस्ताली में यथासम्भव वैदिकविधि के बहुत अंश ले लिए हैं. कहीं २ तो वेद मंत्रों के भाव बिलकुल स्पष्ट ही दीखते हैं. विशेष जानने के लिए विवाह पद्धति हाथ में लीजिये. हां, क्रिया का क्रम अवश्य बिगड गया है.

हस्ताली और विवाहमंत्रों की समानता के नमूने.

हस्तालीप्रतीक.	वेदमंत्रप्रतीक.
७ गुरु माता....	'मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषोवेद' यह वाक्य प्रायः प्रसिद्ध ही हैं (परन्तु विवाह विधि में नहीं)
वर कन्ये वेद....मंगल्यौ	सुमंगलीरियं वधूरिमां पश्यत...
८ गणपतिः दोष....	गणानांत्वा गणपति ँ हवामहे...

१६ क्षीरसागरमनो...	तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे.... अथर्ववेद ११, २४-१६-२६
१७ लक्ष्मी विष्णू ..	तेनेमां नारीं सविता भगश्च सूर्यामिव....* (पाणिग्रहणमंत्र)
१ पशु वर्गे गौ:प-वित्रा	माध्वीर्गावो भवन्तु नः
३ वेदप वित्रो विप्रः	' महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयंक्रियते तनुः
९ ध्रुवस्थिर वर-कन्याकर्म	ओं ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् (गोभिल) ध्रुवं पश्य....
१० क्षेत्रपाल दोषनि..	मधुमान्नो वनस्पतिः....
११ वर कन्या सम दृष्टि...	ओं मम व्रते ते हृदयं दधामि ममचित्त मनुचित्तं ते ऽस्तु ...(तथा) समञ्जन्तु विश्वे-देवाः समापो हृदयानि नौ
४ संवत्सर...	ऋतुभ्यः षट्पदीभव........
५ अंग स्थिति...	दीर्घायुत्वाय जरद ष्टिरस्मि शतंच जीवामि शरदः....जरांगच्छ,....अरिष्टानिमेऽङ्गानि....
९ चंद्र समं मनःशी-तलतां...	ओं सुषुम्णः सूर्यरस्मिश्चन्द्रमा....
१० सावित्री सहितम्	(यह लोग सावित्री सती और गायत्री को भी भूले नहीं)

* यहां रूपक है. सविता=विष्णु, सूर्या=लक्ष्मी. हस्ताली में रूपक भी छोड़ा नहीं.

११ विघ्नाः नश्यन्ताम् प्र त्वामुञ्चामिवरुणस्य पाशान्
(केश छोड़ने की विधि में)

....दोषनिवारणम् लेखा सन्धिषु....तानि ते पूर्णाहुत्या सर्वाणि
शमयाम्यहं (यह पाठ एक नहीं, ६ बार आता है)

१ वरकन्ययोः प्रतिबन्धः प्रेतो मुञ्चामिनामतस्सुबद्धाम्....(ग्रन्थिबन्धन)

२ वराय कन्या कंसार भोजनम् मधुपर्कों मधुपर्कों मधुपर्कः प्रति गृह्यताम्

३ जलं पिबन्तौ.... आचमनीय माचमनीयम्....

६ वर कन्ये अचले स्वाहा ओं आरोहेममश्मानमश्मेव त्वँ स्थिरा भव

७ शुभ प्रजा.... इष एक पदीभव सामामनुव्रताभव विष्णु-
स्त्वानयतु पुत्रान्विन्दावहै .... वीरसूर्दे
वृकामा....... (सप्तपदी)

८ धनधान्य प्र... रायस्पोषायत्रिपदीभव.......

— हस्तमेलापनम् गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्

विवाह की बरात संम्बन्धी अन्य क्रियाएं भी हिन्दुसमाज की ही सी होती हैं. हस्ताली मात्र के इस अवलोकन से ही इन पतितों के प्रति हमारा जातीय प्रेम कम नहीं उमडता तौ भी हम इन के अन्य संस्कार आदि

अन्य संस्कारादि.

क्रियाओं का दिग्दर्शन कराना उचित समझते हैं, क्योंकि किसी भी धर्म की स्थिति का ठीक चित्र देखना हो तो वह उस के धर्म गुरुओं की स्थिति से ही यथार्थ जाना जा सकता है, इसी लिये हमने यह अन्त्यजों के धर्मगुरुओं की धर्मपूंजी=का कुछ अंश आप के सम्मुख रक्खा है. 'गरोडाओं' ने अपनी समझ में सब शास्त्रों का सार खींच लिया है. यज्ञोपवीत संस्कार का अधिकारी केवल अपने को समझ अपना ही करते हैं जिस का अधोलिखित मंत्र हिन्दी, गुजराती मिश्रित है. इस में वैदिक सृष्टि रचना और चार वेद, षट् दर्शनों की भी चर्चा है.

जनोई मंतर (यज्ञोपवीत मंत्र)

ओहं गुरुपर धरु अविनाशी आदी पुरुष अविनाशी है जोजन उपर प्रेम ध्यान हे तीन पुरुष उनकी चोकी करत हे रामकवीर ने रणुंकार हे पेहले * तातणे पाताल उपाया बीजे तातणे मृत्युलोक उपाया तीजे तातणे त्रग * भवन किया चोथे तांतणे चार वेद किया पांचमे तांतणे प्रकाश किया छठ्ठे तांतणे खटदर्शन दिया, सातमे तांतणे सात साहेर उपाया आठमे तांतणे मणितारा रूप धर्यु नौमे तांतणे नौ तारकी जनोई की नौ नाडी की जनोई की सोने की ब्रह्माको दियां करे स्तुति प्रगठ किया जनोई मंत्र संपुर्ण भया गादीए बेट कर गुरु रामानंद कु किया

सीमन्तोन्नयन संस्कार तो इन यजमान, गुरु सभी में बडी धामधूम से मनाया जाता है. मुंडन, नामकरणादि कई अन्य संस्कार भी करते हैं. अन्त्येष्टि में गरोडा लोग शब को जलाते हैं परन्तु अन्त्यज (यजमान) कहीं २ गाढ़ते हैं। मरने पर घर में उसी दिन हवन करते हैं. राशियों पर और कभी जिस दिन बच्चा पैदा हो उस दिन पर

नाम रख देते हैं यथाः—सोमा, मंगलिया, बुधीआ, आदि पौराणिक काल की सभी बातें यथारूप इन में पाई जाती हैं इस के लिये इन के नीचे के दुर्गास्तवन और गायत्री दृढ प्रमाण हैं जिन्हें गरोडा 'तवन' और गावंतरी शब्द से पुकारते हैं. वह यह हैं.

'**तवन**' अखंड ब्रह्मंड थी उपनी, मारी दैत्य किया शणगारा खांडे खीरे खपर भर्या तैम नाम देवी चंडी धर्या डेगर डेगर डेगर ठाम ब्रह्मा विष्णु माहेश्वर नामा, दुर्गा वानी दुर्गादेवी अकल रूपनां कहिये एवा रामे कीधा मैनमेखला । घरकी देवी सजे शणगारा तोय जाणुं मर्म तुमहारा । पूरव देश थी आवी चंडी हाथ तरशूल ने हांहांकरणी जले थले रक्षा करणी ओगट पी रख्या करणी, पाणी पाखंडी कु भरवणी, इत्त नाम शुक्राचार भणंते गणंते, शांखंते साभलंते आप आप का गुरु गुरु को नमस्कार "

ग.वंत्री " देवं देवं महादेवं सणदेवं सुणो तो मनसा रूपणी, आप तेज वहाणी काया बंधन आत्मा जनम सुधन्त पूर्णम परमेश्वरी तारा मंडलीक एकादशी व्रत करतंन फल ब्राह्मणं पानं पोपं धूपं दीपं कांसू कलपदान रे॰ाष्टमी, कामधेनं मुखदेनं बैतरणी उतरवा काशी कायन्ती मिया मथुरी उजैनपुरी शबदपुरी जीवने मोक्षदायका "

गरोडिया भाषा के समत्व-दर्शक नमूने.

अब हम कुछ थोड़े से गरोडिया भाषा के नमूने भी आप के समक्ष उपस्थित करते हैं. आपने सुना होगा कि एक खाकी साधु ने अपने चेलो को एकही कूंची से संस्कृत भाषा की कोठरी का ताला खोलने की विधि सिखा दी थी. वह मंत्र इतना ही था कि जावे चेले ' हरएक शब्द पर अनुस्वार लगा

दिया कर ' सो वह नियम कुछ २ इस गरोडिया भाषा में भी काम में लाया गया है. आज कल कुछ लोग अपनी २ भाषाओं के शब्दों में ' इर्फा, ' तुर्फा ' ऐसे कुछ अक्षर डाल कर शब्द का रूप बदल देते हैं और उसे खास २ ही समझते हैं. उस नियम की छाया भी इस भाषा में कहीं२ देखी जाती है. गरोडा अपने गुरुत्व की मान-रक्षार्थ कई प्रसंगों पर इस भाषा में परस्पर वार्ता भी करते हैं. कुछ भी हो उन्होंने इस भाषा को एक मान्य और शास्त्रीय भाषा समझ कर इतिहास में संस्कृत भाषा और धार्मिक कृत्यों का महत्व और आपद्धर्म में अपनी दृढता अवश्य सिद्ध कर बताई.

गरोडिया	गुजराती	हिन्दी और संस्कृत
धनुर १	क्षत्रिय	क्षत्रिय
बमको २×	ब्राह्मण	ब्राह्मण
तपिओ ३	मुसलमान	मुसल्मान
झरबी	कणबी	कुर्मी
समुद्रा ४	वाणिया	वैश्य
सीत, ओल पोकरो	ढेड	चर्मकार कोली

१ धनुर्धारी होने से. २ ' ह्रस्वे ' अष्टा० अ. ५ पा. ३ इस सूत्रसे संस्कृत में उसी वस्तु को छोटी कहने के लिए ' क ' प्रत्यय लगाते हैं जैसे बाल=बालक, कन्या=कन्य ।. ३ कांधी होने से. ४ समुद्र द्वारा व्यापार करने से

कर कोल ५ लगन	भंगीया	भंगी
पप्पेखानी ६	पारसी	पारसी (जाति)
गोधमा×	गहूं	गोधूम (गेहूं)
मेनका	चोखा	चावल
आदनी×	खीचडी	खिचडी (ओदन)
अदन×	भात	ओदन
सेटबो	रोटलो	रोटी
डड्डी	दाल	दाल
सनाक*	शाक	शाक
तहूडियो×	चोर	चोर (तस्कर)
वस्तरड्ड	लुगडुं	वस्त्र
वरख×	वृक्ष	वृक्ष
चंशु×	आंख	आंख (चक्षु)
अम गच्छीए×छीए	अमो जवाना छीए	हम जाने वाले हैं
ते शुं करवे छे ?	ते शु खाय छे	वह क्या खाता है
घटवुं×	पीवुं	पीना
नीरखु घट×	पाणी पी	पानी पी

५ ' कोल ' शब्द संस्कृत में सुअर के लिए है. ६ अमुक वस्तु के खाने वाले होने से. * मध्य में ' अन ' प्रत्यय की छटा है (×) इस चिन्ह वाले तो संस्कृत के समाकृति ही हैं.

अन्त्यजों के कुछ प्रकीर्ण रि-वाजों का दिग्दर्शन.

रीति रिवाज का प्रभाव भी अति प्रवल है. कुछ रिवाजों में इन पतितों के साथ उच्च हिन्दुओं का सम्बन्ध अच्छा रहा है और उसी का यह फल है कि वह आज तक हिन्दू रह सके. संयुक्तप्रदेश में चमारों के यहां कोई २ उच्चपंक्ति के ब्राह्मण घडी मुहूर्त देखना और सत्यनारायण की कथा आदि कार्य करते हैं और उनके यहां का शुष्कान्न और ताम्रमयी अथवा रजतमयी दक्षिणा लेते हैं. दक्षिण के महारों में भी इसी प्रकार. कुछ स्थानों में हिन्दुओं के कुए से पानी भी भरसकने का प्रसंग आया हुआ सुना गया है. ग्रामीण प्रजा में तो यह लोग कार्यवाहक न हों तो सब की मिट्टी ही खराब समझिये. संयुक्तप्रदेश की बडी२ ज्योंनारों में खर्च होने वाला आटा चमारियों का ही पिसा होता है. चमार घोडे के साथ सहीसी करते हुए रईसी भी करते ही हैं, जब कि घोडा खाली ले जाना होता है, और यह अधिकार तो भंगियों को भी खुल्लमखुल्ला प्राप्त है ही. गुजरात में गजी गाढा बुनना इन लोगों का विस्तृत मुख्य व्यापार है. पानी के चार पांच छींटे छिड़क उस कपडे को सर्व साधारण खरीदते हैं. यह लोग सूरत आदि नगरों में माली (फूल हार बनाने) का भी काम करते हैं. अंग्रेजों के आश्वासन से यह लोग कोचवानी और खानसामा का कर्त्तव्य प्रायः करने लगे हैं. जिससे अंग्रेजों के साथ टेबल पर भोज उड़ानेवाले कई

हिन्दु जन भी इन्हें अपना रसोइया होने का अधिकार देने में समर्थ हो जाया करते हैं. कहीं २ खेती और भिन्न प्रकार की मज़दूरी भी इन का जीवनोपाय है. संयुक्त प्रदेश के चमार मुर्दे को गंगा में प्रवाहित करते हैं और दशाह त्रयोदशाह भी उसी तरह। 'उज्जैन' में इन को 'बलाई' कहते हैं, वहां केवल हिन्दुओं की रसोई और पनिहारी की जगह में जाने का प्रतिबन्ध है, शेष संयुक्त प्रदेश की तरह स्पर्शास्पर्श का विशेष विचार नहीं. ' ईडर ' राजधानी में इन की ' भाँभी ' संज्ञा है. भाँभी लोग मुसलमानों का पकाया अन्न नहीं खाते, गुजरात के गरोडा श्रावणी पर अन्त्यज यजमानों के रक्षाबंधन बांधते हैं.

गुजरात के बहुत से अन्त्यज स्वामीनारायण मतावलम्बी हैं. बड़ोदे के निकट ' छाणी ' ग्राम में उन का एक मन्दिर है जिस में देव-दर्शनार्थ बहुत स्वच्छता और पवित्रभाव से यह जाते हैं. कबीर पन्थी भी इनमें बहुत हैं. सूरत और बडोदा में इस जाति के महन्तों के कबीर मन्दिर हैं. जिन में शुद्धता का अच्छा व्यवहार है.

अहमदाबाद में रामानुजाचार्य मतावलम्बी इन के महंत हैं. उस गद्दी के महंत ब्रह्मचारी रहते हैं, अर्थात् उस गद्दी के महंत को गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की पद्धति नहीं है. भारत में कई लाख अन्त्यजों के ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने और दिनरात अन्त्यजों के घरों में ईसू के गीत गाये जाने पर, इतना ही नहीं किन्तु अन्त्यजों के महामलिन बालकों को शुभ्रवस्त्रधारिणी मेम साहबों के गोद खिलाने, नहीं २

मिष्टान्न भी उड़वाने पर और इधर हम हिन्दुओं के ' पोईस २ ' पुकारने की नौबत आने पर यदि इन अन्त्यजों में उपर्युक्त हिन्दुत्व के अणु अथवा परमाणु कुटे कुटाये भरे रहें तो इस मे अधिक आश्चर्यकारक घटना और कौनसी होगी ? नैयायिक महाशय की प्रसिद्ध जनश्रुति ' पात्राधारंघृतमुत घृताधारं पात्रम् ' के विवेचन में जैसे वह बाज़ार से लाये हुए घृत से विमुख रह गये और खाली पात्र हाथ में रह गया उसी प्रकार ' धर्माधारारूढिः किंवा रूढ्याधारो धर्मः, के महा परीक्षण में हमारे आधुनिक धर्मनेता धर्म से विमुख रह कर केवल रूढ्युपासक रह गये, पिछलगुओं की तो फिर बात ही क्या रही. यदि हम प्रचलित रूढियों में धर्म का आश्रय लेंगे तभी कुछ बनेगा नहीं तो यदि धर्मदृष्टि को एक तरफ रख कर शुष्क रूढिसेवी ही रहे तो धर्म की डींग मारना और शास्त्रीय विषयों में टांग अडाना एक अर्थरहित विषय होगा. वर्तमान में प्रचलित रूढियों के दोषदर्शन का एक महाकाय ग्रन्थ तय्यार हो सकता है अतः विस्तारभय से हम यहां पर प्रकृत विषय के अनुसरण में कुछ थोडीसी ही विचारणीय बातें लिखते हैं.

रूढि की धर्मपर सवारी.

१. चमार, भंगी अधिक अपवित्र या पैर के जूते का तला ?

२. जूता क्यों धार्य और चमार, भंगी क्यों अस्पृश्य ?

३. शहरों का गन्दा खाद अपने खेतों में डालने वाले काछी आदि क्यों स्पृश्य और भंगी क्यों नहीं ?

४. गुजरात के रिवाज के अनुसार अन्त्यज से छुआ हुआ हिन्दू मुसल्मान भाई से जा भिड़ने पर क्यों शुद्ध हुआ माना जाता है ? क्या मुसल्मान गंगाजी है ? एक हिन्दू को मुसल्मान तो अपने स्पर्श से शुद्ध कर दे और एक उच्च हिन्दू अधम हिन्दू को नहीं, अर्थात् ब्राह्मण और चमार के परस्पर स्पर्श में चमार शुद्ध हुआ समझना चाहिये न कि वह ब्राह्मण अशुद्ध. ब्राह्मण में ज्ञान रूपी पावक अग्नि तत्व विद्यमान हैं जिस के स्पर्श से अज्ञान रूपी अशुद्ध चमार का शुद्ध होना युक्तिसिद्ध भी है.

५. मलभक्षी और स्वभावतः वान्ताशी कुत्ता गोद, बग़ल, गाडी, मेज़, कुर्सी और शय्या में क्यों बग़लगीर बनाया जाता है जो स्वामि-भक्ति के उपहार में अपनी पावन जिह्वा स्वामी के होठों तक पहुंचाये बिना नहीं रुकता, और अन्त्यज घर की चौखट पर भी न चढे ?

६. यदि कहो कि स्वाभाविक मलिन कुत्ते के बच्चे को हम स्वयं साबुन से स्नान करा स्पृश्य बना लेते हैं तो मनुष्य के बच्चे अन्त्यज को क्यों तद्वत् नहीं, क्या मानवदेहधारी वह कुत्ते से भी अधिक पतित है ?

७. घर में अन्त्यज का निवास या पड़ोस अधिक बुरा लगता है तो घरों में और विशेष कर अतीव सङ्कुचित घरों में जो पाखाने निवास करते हैं उन पर भी तो तुलनात्मक दृष्टि कभी २ डालनी चाहिये ?

८. पाखाने में बैठ कर बीडी सिगरेट ज़ोर से सूंतने पर जो-नाक

से लेने में असह्य-परमाणु मुख शरीफ़ में पवन द्वारा बीडी के मध्यवर्त्ती सुमार्ग से सरलतया प्रवेश कर जाते हैं इनकी अपेक्षा अन्त्यज के शरीर के निकटवर्त्ती परमाणु क्या अधिक हानि पहुंचा सकते हैं ?

९. चर्मकुंडों में चमड़ा पकाने के पश्चात् चमार तो न्हा धो कर भी अस्पृश्य है पर मलेरिया के प्रत्यक्ष स्वरूप सड़े पाखानों में सायंप्रातः आराम से बैठ घंटों बीडी पीने वाले व्यक्ति बिना न्हाये भी स्पृश्य हैं, वाहरे न्याय, वाहरे धर्म और वाहरे पदार्थविज्ञान !

१०. भस्म रमाए साधुवेषधारी असंख्य अज्ञातकुल आचरण-भ्रष्ट व्यक्ति जब आप को इस स्पर्शास्पर्श की सन्देह दोला में आरूढ घृणित भासित नहीं होते तो सत्यता से अपनी यथार्थता प्रकट करने वाले स्वामिसेवी सच्चे परिचारक राम कृष्ण के भक्त अन्त्यज क्यों घृणित प्रतीत होते हैं ?

११. श्री जगन्नाथ पुरी का भोग लगा हुआ अटका (भात) जब स्पर्शास्पर्श और जातपांति के भेद बिना जान बूझ कर उड़ाया जाता है तो दूसरे मन्दिरों में यह व्यवहार क्यों न हो क्या उन में जगत्+नाथ नहीं; इत्यादि.

इन व्यवहारों से यह स्पष्ट है कि हम धर्म अर्थात् कर्त्तव्य आचार की जगह उस के अनधिकारी प्रतिनिधि रिवाज को पूज बैठे. हां यह बात तो हमें अब भी लक्ष्य में रखनी चाहिये कि शुद्धा-शुद्ध, आचारानाचार, स्पृश्यास्पृश्य वस्तुतः क्या है. हमारे आचार

से रहित होने की निर्बलता से धर्म का स्थान आज रूढियों ने घेर लिया, इसी लिए हमें इन शब्दों में कहना पडता है कि " रूढि की धर्म पर सवारी " हो रही है, अन्यथा हमारे पूर्वोक्त लेखानुसार धर्म तो खरा धर्म ही रहेगा. सारांश यह कि रूढि धर्मानुसारिणी होनी चाहिये न कि धर्म रूढ्यनुसारी. अहर्निश के व्यवहारों में हम स्वच्छता और दीन हीन के रक्षणादि का वास्तविक व्यवहार किस प्रकार का कितने अंशों में पाल सकते हैं अथवा पालने में विवश बन बैठे हैं और उन प्रसंगों पर देश काल को न देखकर काम करने में क्या २ परिणाम आते हैं इस विषय की एक चित्ताकर्षक विनोदात्मक वार्त्ता पाठकों के सम्मुख रखते हैं.

भूरा चमार की गंगा यात्रा.

शुभ्रनगरी में एक रईस गौड ब्राह्मण गङ्गाप्रसादजी बहुत पीढियों से बसते हैं. उन के एक पुत्र जान्हवीप्रसाद जी संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में होशियार और उन के एक लंगोटिया यार ' मनोहर ' भी ख़ूब पढे लिखे हैं. दोनों में खासी दोस्ती है और प्रायः एक ही साथ रहते हैं, नेक चाल चलन के हैं.

मनोहर—(मनमें) अहा, आज चैत्री पूर्णिमा का चंद्रमा गगनमंडल और इस मही को कैसा सुशोभित कर रहा है मानो श्वेत पुष्पों की बौछार हो रही है, नहीं नहीं आज तो चौदस ही है. पूर्णिमा तो कल होगी. कल तो इस की बाखें और भी खुलेंगी.

(प्रकट) जान्हवी ! चलो न सवेरे की गाडी से गंगा का स्नान कर आवें. मेले की भी खूब सैर होगी, कोई साधु सन्त आवेंगे उन के भी दर्शन, ' एक पन्थ दो काज '

जान्हवी:—मनोहर ! बात तो वक्त की कही, जा जा, कपड़े उपड़े सभाल, मैं भी अभी थोडा सा सामान बगल में दबाये आता हूं.

[२० मिनिट में दोनों सामान ले कर २ मिनिट आगे पीछे फिर बैठक में आ गये.]

मनोहर:—चलो, अब देर मत करो गाडी छूटने मे ज्याद: देर नहीं, तुम टिकिट ले लेना मैं सामान देखे रहूंगा [दोनों टिकिट ले और बाबू को टिकिट दिखाकर प्लेट फॉर्म पर पहुंचते हैं. गाडी में कई एक लोग दरवाज़े खोलकर घुसने वाले हैं पर चैत्री के मेले की भीड उन्हें जगह कहां मिलने देती है.]

जान्हवी:—मनोहर ! आज तो रहे.

मनोहर:—रहे क्या, तुम मेरी बात मानो उस गाडी में बैठ जाओ जहां वह लंबी दाढ़ी वाला बुड्ढा बैठा है.

जान्हवी:—तुम्हें मालूम है, वह बुड्ढा कौन है ! तुम्हें अभी यह बात नहीं फुरी कि उतनी जगह अकेले बुड्ढे के लिए क्यों ख़ाली पड़ी है और दूसरे कम्पार्टमेंट में तो तिल रखने को भी जगह नहीं.

मनोहर:—(मुसकराता हुआ) मालूम क्यों नहीं, बुड्ढेने आराम से सफ़र करने के लिए यह जगह अपने लिए रिज़र्व्ड कराली होगी.

जान्हवीः—बलिहारी है यह बुड्ढा और इसका मुंह, रिज़र्व्ड करानेवालों का फ़ोटो ऐसा ही होता होगा.

मनोहरः—जान्हवी ! तुम ऐसे ही बिना समझे बूझे ऐसी बात कह देते हो. सीधी सी नियम की बात में कारण सोचने बैठते हो. रिज़र्वड न कराया होता तो रेल्वे के नियमानुसार और फिर इतनी भीड में १० आदमी तो बैठते.

जान्हवीः—यही तो मैं कहता हूं कि देखो दूसरी गाडियों में तो नियम को भी जगह नहीं, वह भाड में घुस गया है, दस की जगह बीस २ भेडों की तरह भरे हैं और यह बुड्ढा अकेला मौज कर रहा है.

मनोहरः—फिर है क्या, जो यह जगह ख़ाली पड़ी है ?

जान्हवीः—यह बुड्ढा यातो भंगी है या चमार. चाहे पूछ लो.

मनोहरः—अच्छा ! ! ! यह बात है तो मेरी समझ में पूछ लेना अच्छा होगा, सन्देह निकल जाय, पूछ लेता हूं. (बुड्ढे की ओर जाकर) बुड्ढे ! तुम कौन हो, कहां जाते हो, ?

बुड्ढाः—[दाढ़ी पर हाथ फिरा हाथ जोड] अन्नदाता ! मैं एक ग़रीब पापी बुड्ढा हिन्दू हूं श्रीगंगाजी के स्नान करने जाता हूं [सिर पर हाथ फिरा कर] यह देखिये बुड्ढे की बुड्ढी लंबी चोटी.

मनोहरः—जान्हवी ! यह तो कहता है कि मैं हिन्दू हूं. चोटी तो मैंने भी देखी.

जान्हवीः—तो मैं कब कहता हूं कि यह हिन्दू नहीं,

मनोहरः—फिर क्या, चलो बैठ जायें.

जान्हवीः—वाह यार, तुम समझते ही नहीं, इतना सिर मारा.

मनोहरः—अब तो तुम्ही कहते हो कि वह हिन्दू है और वह भी कहता है कि मैं हिन्दू हूं, फिर क्या ?

जा०ः—तो क्या हिन्दू हो कर वह भंगी नहीं. उस से साफ २ पूछो कि वह कौन जात है.

मनो०ः—बुढ्ढे तुह्मारी जात क्या ?

बु०ः—ग़रीब परवर ! जात वही बता चुका, आप लोगों की ताबेदारी, मजूरी धजूरी ही मेरा काम है, आप का सेवक हूं.

जा०ः—अरे तू यह बता कि भंगी है या चमार ?

बु०ः—हजूर की जूती गांठने वाला.

जा०ः—देखा न मनोहर, बात निकली न.

म०ः—बेशक, बिचारा साफ़ कहते ज़रा झिझकता था, जान्हवी ! जान्हवी ! सुना, गार्डने सीटी देदी, तुम ने आज यहीं रक्खा, बैठो न यार, देखो १ हाथ के ही फासले पर पास के दूसरे कम्पार्टमेंट में सफेदपोश लोग बैठे हैं यह तो घबड़ाते ही नहीं, हम भी इस बुढ्ढे से अलग दूसरी बेंच पर बैठे जाते हैं. फिर तो डर नहीं, यों तो

इस एक गाडी में ही ५०० आदमी भरे होंगे. यह सब एक लकड़ी की चौकी है, बीच में खाने ही तो बना दिए हैं और है क्या ?

[बुड्ढा मनो० की बात सुन मूंछों में ही मुस्कराने लगा]

जा०:—यह लो मनोहर गार्ड ने दूसरी सीटी दी.

म०:—फिर बैठो न, गंगा जी का स्नान तो करना ही है फिर क्यों डरते हो.[गाडी धीमे २ चलनी शुरू हुई, मनो० दर्वाज़ा खोल झट अंदर घुस बुड्ढे से अलग दूसरी बेंच पर जा बैठता है पीछे से जान्हवी भी ज़रा इधर उधर नज़र फिरा कर मनो० के पास जा बैठता है]

जा०:—मनोहर ! आज तो अच्छे स्नान किये.

म०:— हमने क्या, इस गाड़ी में बैठने वाले इन सब ने ही ऐसे स्नान किये और रोज़ करते हैं. यदि हमें इन में से कोई कुछ कहे तो देखो मैं कैसा झाडता हूं. सब पंडिताई निकाल दूं.

[पास के दूसरे कम्पार्टमेंट में बैठे हुए सफेद पोशों में से एक मनो० की बातों को प्रीति से सुनता हुआ " हां ठीक है " बोलता है].

म०:—जान्हवीप्रसाद जी ! मुझे एक प्रश्न होता है कि क्या इतनी बडी गाडी में इस बुड्ढे के सिवाय और कोई इस की बिरादरी का न होगा. ३०० आदमी तो इसी गाडी में मालूम होते हैं और सारी ट्रेन में—जो बहुत सी गाडियां हैं उन कुल—चार पांच हज़ार आदमियों में क्या मालूम कितने भंगी चमार भरे हों, ज़रा बुड्ढे से पूछें तो. [बुड्ढे की ओर देख कर] क्यों भाई बुड्ढे! क्या तुम लोगों में बहुत से लोग स्नान करने जाया करते हैं ?

बुड्ढा:—गरीब परवर बुरा न मानें तो अरज करूं. कोई १० आदमी तो अपने गांव से हम ही निकले हैं. यहां स्टेशन पर आ कर हमारी अकल कट गई, भीड में पिचते कुचते सब में सब तितर बितर हो गये. कोई कहीं घुस गया कोई कहीं.

म०:—[खूब ज़ोर से ठट्टा मार कर] देखिये जनाब पंडित जान्हवीप्रसादजी साहब ! ! ! अब तो श्रीमान् को सन्तोष हुआ, वैसे ही घबड़ा रहे थे, हम तो सीधी जानते हैं.

"जातिपांति पूछे ना कोय, हरि को भजे सो हरि का होय"

[बातें करते २ इतने में एक छोटासा स्टेशन आ गया, गाडी खडी हुई नहीं कि दबादब लगे घुसने आदमी]

मनो०:—जान्हवी. देखो अब मज़ा आता है !

जा०:—पर मनोहर ! एक तरह से यह बुड्ढा बड़ा अच्छा है. इस ने सच सच बता तो दिया.

म०:—हम तो सच ही के दोस्त हैं, दुनियां का ढंग झूठ को जिताने का और सत्य को छिपाने का है. देखो जिस ने सच कहा होगा कि मैं चमार हूं उस से लोग हट रहे होंगे और जिसने छिपाया होगा उस से बगल से बगल मिलाये बैठे होंगे, क्यों है न ठीक.

जा०:—भाई तुम कहो सो सब ठीक, इसी ठीक से तो हमारा ठीक लगा नहीं तो अभी वही प्लेट फार्म की ठीक ठीक ठडी हवा खाते होते. [गाडी खड़े होने पर चौथे कम्पार्टमेंट की ओर से ज़रा झगडे की सी आवाज़ सुन कर]

म०—-देखो जान्हवी ! उस बिचारेने पूछने पर सच कह दिया कि मैं चमार हूं, तब उस को–गाली गलोच तो अलग रहा, चर्मचपेटिका की प्रसादी की तय्यारी हो रही है [**पास के सफेद पोशों में से एक भूरा बुड्ढा.** मनोहर को सम्बोधन कर] क्यों साहब आप ही ज़रा इस को जगह दे देवें नहीं तो यह बिचारा स्नान से रह जायेगा.

म०:—-आवे न, हम कब रोकते हैं.

जा०:—-यार मनोहर ! तुम बडे अजीब हो.

म०:—-जब दोस्त ही अजीब हैं तब हमें भी कुछ अजीब होना ही चाहिये.

जा०:—-मैं क्यों अजीब !

म०:—तुम यों अजीब कि जब पहले मैंने कहा कि इस बुड्ढे के पास बैठ जाओ तब तो न बैठे फिर हारझकमार गाडी छूटती देख बैठ गये, इस बेचारे की भी तो गाडी ही छूट रही है न ?

जा०:—अच्छा बिठा लो, आ भाई घुस आ, तू भी बैठ जा, जूठन का एक ग्रास खाया तो वैसा और पेटभर खाई तो तैसी.

[चमार आ कर सिकुडा हुआ बैठ जाता है, और जान्हवी ज़रा चिलम पीने के बहाने साथ के सफ़ेदपोशों की जगह में बात करता २ जा बैठता है और भूरे बुड्ढे से]. बुड्ढे ? ज़रा इधर भी देना, तलब के मारे अकल ठिकाने नहीं आती, ज़रा एक दम तो लगा लूं.

[भूरा बुड्ढा मैल, हाथ के पसीने और लार से तर हुई अपने हाथ की छोटीसी चिलम बडे आदर से हाथ बढ़ा जान्हवी के हाथ में देता है और जान्हवी भुक्कड़ की तरह ऐसे ज़ोर की दम लगाता है कि एक बड़ी ज्वाला चमक जाती है]

भूरा बुड्ढाः—वाह साहब आप तो बडे उस्ताद निकले !

जा०:—अरे यार उस्ताद फुस्ताद काहेके. हम तो ऐसे ही बातों २ दोस्ती में आ कर घर से जल्दी निकल पडे, न सुक्का लिया न हुक्का, तलब के मारे ठिकाने लग गये अब ज़रा ठंडक पडी. दोस्त भी ऐसा मिला है कि तमाकू से बेइल्म मुंह बांधे बारह २ घंटे बिता देता है.

मनो०:—(जान्हवी की ओर से ' दोस्त ' शब्द सुन, मुंह फेर कर) हां हां ! ! ! अब आपकी तबियत ठंडी हुई होगी. मैं जानता हूं कि इस कम्पार्टमेंट में अपवित्र हो जाने के कारण उधर जा अग्निहोत्र कर प्राश्चित्त किया है, पर ज़रा पहिले न्हा तो लिए होते.

जा०:—बाबा ! तू कहे सो सब ठीक, तेरी दोस्ती में इसी बात से बहुत घबडाता हूं.

म०:—मैं आप को चरस की दम लगाने से कब रोकता हूं, हां याद रखना कि इस दम से दम हो कर दम की ख्वारी न हो.

भूरा बुड्ढाः—क्यों साहब और भरूं, कहिये तो लखनऊ की मुश्की जमाऊं ?

म०:—तुम लोगों को ख़बर नहीं कि गाडी में पीने की मनाई है.

भू०:—वाह साहब ! देख लिए गाडी के नियम, दस की जगह बीस भरना कौन सी कलम से लिखा है, सब नियम ही है.

जा०:— पर भाई एक नियम की ज़रूरत है कि ट्रेन में भंगी चमारों की एक गाडी अलग रहा करे.

भू०:—यह कैसे हो, सिवाय मेले या बरातके हर एक ट्रेन में एक गाडी क्या आधी गाडी भी बल्कि २० भी भंगी चमार नहीं होते फिर ' **हमारा** ' सैलून कौन लगावे ?

जा०:—" हमारा ? ? ? " तुम्हारा कैसा ? तुम कौन ?

भूरा०:—हैं कौन, हम अपनी तो पीछे कहेंगे पहिले तो हमें इस तुम्हारे पडोसी दाढ़ी वाले बुड्ढे और इस सिकुडे बैठे कमबख्त चमार पर बडी देर से मन ही मन गुस्सा आ रहा है. इन बेहूदों को इतनी भी खबर नहीं कि डेढ़ पैसे के साबुन या अरीठों में यह करामात है कि लोग हम से दूर तो क्या ' **हमारे** पास बैठने आते हैं और हमारी थूकपात्री चिलम को छूना तो क्या प्रेम से मुंह में रख लेते हैं मानों जगन्नाथ जी की प्रसादी है.

म०:—जान्हवी ! कुछ समझे ! ! ! रहने दो अब इनकी जात बहुत मत पूछो

[जान्हवी नीचे कान दबाये मन में लज्जित हो मनोहर के पास आबैठता है और मन्दस्वर से] **क्यों मनोहर ! क्या कुछ दाल में काला है ?**

म०:—कुछ काला क्या मुझे तो सब काला पहाड मालूम होता है और वैसे तो काला कुछ नहीं ' भूरा ' ही है.

जा०:—तो क्या यह भूरा बुड्ढा और उस के साथी इस बुड्ढे की बिरादरी के ही हैं ?

म०:—अब बहुत शंकासमाधान मत करो, मैं जो कहा करता हूं कि इस तमालेष्टि को छोड़ दो ऐसे ख़ानदानी हो कर यह शोभा नहीं देता

[जान्हवी के चले आने पर भूरा बुड्ढा साथ वालों से]

क्यों भाई मैं ठीक कहता हूं न, यह लोग डेढ पैसे के लालच के कारण जूते खाते हैं. हमारे कपडे कहां के रेशमी हैं, सिर्फ यह गजी गाढे के धो डालने से हम इन लोगों में शामिल हैं किसी का कुछ नुकसान नहीं करते और अपने पर भी जूते खाने की नौबत नहीं आने देते.

[तीसरा स्टेशन आने पर गाडी रुक गई]

म०:—[जान्हवी के मुख पर चिन्ता देख कर] जान्हवी सोच क्या है ? मैं किसी से कहने वाला नहीं न घर चल कर कुछ ज़िक्र करूंगा.

जा०:—रहने भी दे यार, यह सब तेरी ही करतूत है.

म०:—[ज़ोर से ठट्टा मार कर] ज़माना ही ऐसी करतूतों

का है. ' अहमद की टोपी मुहम्मद के सिर, तलब लगी जनाब को और करतूत मेरी, बेशक, बेशक.

[स्टेशन पर कई मुसाफर अंदर आ मनोहर और जान्हवी की बैठक के पास आखडे हुए, पास ही उस बुड्ढे के पास की खाली जगह, देख मुसाफरों में से तीन बैठ गये]

जान्हवी:—अरे भाई ! उस बुड्ढे से जरा इधर ही रहो.

बुड्ढा:—हां भाई साहब ' ज़रा उधर ही को रहो '

मुसा० लोग:—क्यों ! क्या हमने किराया नहीं दिया है, क्या तुम्हीने टिकिट लिए हैं ?

जान्हवी:—अरे मित्र ! किराया तो हमने भी पूरा ही दिया है पर आज का किराया तो जुर्माना सा हो रहा है.

मनोहर:— यह पाकपना अब अपने ही तक रक्खो तो अच्छा, चिलमची और पवित्रता का ढोंग ! ! !

मुसाफ़र लोग:—क्यों साहब क्या है ! हमें भी तो सुनाइये.

मनोहर:—सुनाऊं तो, पर पहिले मेरी बात का जवाब दो, वह यह कि स्नान से क्या लाभ होता है ?

मुसा०:—सुनते तो यह हैं कि सब पाप कट जाते हैं.

मनो०:—अच्छा सब पाप न सही तो छूने छाने से जो गंदगी या मैलापन हो-कमसे कम वह तो कट जायेगा कि नहीं. ?

मुसा०:—हां साहब, जब पाप कटने की बात है तो कम से-कम आप का कहना तो भी होना चाहिये.

मनो०:—तो यह बुड्ढा बिचारा हिन्दू है, स्नान का प्रेमी भगत है, दुनियां के ढंग से इसे चमार कहते हैं और नापाक मानते हैं, आपने सुना होगा कि कच्चा चमडा सूखे चमडे से अधिक अशुद्ध माना जाता है, सो माछी, कसाई आदि कच्चे चमडे का काम करने वालों के छूने में कोई नहीं हिचकता और इस बिचारे जूते गांठने वाले से सब दूर भागते हैं. यह मित्र (जान्हवीप्रसाद) भी सब पढाई लिखाई ताक में रख कुछ नहीं सोचते [इतने में गाडी छूट गई].

मुसाफरः—अरे भाई जात्रा में इन बातों का बिचार शास्त्र में भी नहीं माना है और फिर हम किसान ज़मींदार लोग दिन रात इन चमारों से व्यवहार रखते हैं, यह हमारा हल जोतें, घर में आवें जावें व्याह शादियों में बडे २ काम हमारे घर में इन की स्त्रियां करें, हमारा इन के घर में पिसे कुटे, हम इन से कहां तक विचार करें, आप शहर के लोग हैं, आप ऐसी फुरसत की बातें करें तो ठीक. यह लाठी पर रोटी *लटका लावें तो वह हमारा खेत का जीवन होती है.

मनो०:—जान्हवी ! देखो यह लोग कितना प्रेम करते हैं.

---

* काश्मीर की ओर हिन्दू जन मुसलमान तक की लाठी पर लटका कर लाई हुई रोटी खेतों पर खाते हैं.

[इतने में **मुसाफरों** ने भी कुछ गन्दे कपड़े फाड़ कर दियासलाई लगाई और मिट्टी की छोटी से चिलम में गला हुआ कपड़ा–तमाकू के ऊपर–जला कर जीभ लपलपाते हुए एक के बाद दूसरा नंबर २ से खींचने लगा.]

एक मुसाफरः—अरे भाई बुड्ढे ! यह उजले चिट्टे कपड़े पहिन कर कहां की तय्यारी में हो ?

भूरा बुड्ढाः—अपने धर्म में स्नान ध्यान की बात लिखी ही है सो गंगाजी के स्नान की इच्छा से निकल पड़े हैं

वही मुसा०ः—हां भाई ठीक है यह तो अपने हिन्दू भाइयों का धर्म ही है. लो बुड्ढे जी दम लगाते हो?

भू० बु०ः—हम तो अभी पी कर चुके हैं.

जान्हवी०ः—(मन्द स्वर से) मनोहर ! देखा यह मुसाफर भी मेरी तरह हुक्का–व्यवहार करने लगे.

मनो०ः—अरे भाई यह तो रोज़ २४ घंटे होता रहता है और यह तो सीधी सी बात है कि स्वच्छता के अभाव से ही यह लोग छूत छात के झगडे में आ जाते हैं वैसे ईश्वर ने तो इन के सींग उगाया ही नहीं कि जिस से लोग खबरदार रहते, देखो ईश्वरीय नियम से हम प्रत्येक जाति [घोडा, गाय, सिंह, हाथी आदि] को दूर से ही देख कर ख़बरदार रह सकते हैं, अगर इन लोगों से भी ऐसी ही सख्त होशियारी की आवश्यकता होती तो कुछ पृथक् निशानी तो ईश्वरीय होती न.

जा०:—तो क्या यह सब मनुष्यों के समान दर्जे के हैं जो खास निशान नहीं ?

म०:—तुम खुद सोचो, मुझे तो ऐसा ही लगता है.

जा०:—वाह ? क्या कभी गदहा गाय बन सकता है ?

म०:—ज़रा समझ कर बोलो, गदहे और गाय की बात यहां कैसे घट सकती है, वह तो जाति ही अलग है.

जा०:—तो क्या ! चमार और दूसरे ऊंची जाति के लोगों की जाति अलग नहीं.

म०:—नहीं, एक ही है, हां काम अलग २ हैं, देखो चोखी पहिचान, चमारी और ठाकुर साहब के संयोग से–तुम ने सुना होगा–सन्तान पैदा हो जाती है, पर क्या यह सुना कि बैल और गदही से हो; यही एक जाति और भिन्न जाति की पहिचान है.

जा०:—अरे, यह क्या बात, सुना तो था कुछ गुपचुप कि कई ठाकुरों ने चमारी घर में डाल रक्खी हैं, और क्या कहूं हमारे शहर के एक बनिये ने एक भंगिन जगजाहिर घर में डाल ली और एक ब्राह्मण देवता भी इसी तरह पाक हो चुके हैं पर यह तो नहीं सुना कि किसी बैल ने गदही घर में डाली हो, तुम्हारी बात कुछ ऐसी होती है कि मेरी अकल बंद हो जाती है (हंस कर) तभी तुम को मेरे प्रति ' अक़लबंद ' सम्बोधन करने का मौक़ा मिलता है.

[मनोहर हंस कर कुछ कहने को हुआ कि आख़िरी स्टेशन आ गया और इतनी बातों में कई स्टेशन निकल गये, लोग लगे एक दम पहाड से टिड्डी दल की तरह निकलने. यह दोनों यार भी टिकिट दे रास्ता पूछपाछ कर गंगाजी की पगडंडी पर पड गये]

जान्हवी०:—क्यों मनोहर! हमारे साथी लोग कहां रह गये.

मनो०:—शुकर है तुम्हें साथियों से प्रेम बढा. अगर यह प्रेम है तो शायद बुड्ढा और वह भूरा भी मंडली सहित फिर मिले [इधर उधर देख कर] अब उन की बात छोड़ो.

जान्हवी:—भाई स्नान हों तो ऐसे, यात्रा हो तेरे साथ. काहे को ऐसा मौक़ा फिर कभी मिलेगा.

मनो०:—बेशक यह दुनियां के अनुभव की बातें हैं, अभी तो आगे २ आप की आंखें खुलेंगी. गंगा जी की धार जान्हवी! दीखने लगी, कहीं ऐसी जगह ठहरो जहां थोडा एकान्त और ज़रा स्वच्छता हो, मेरे ख्याल में अपने प० रामलालजी के डेरे में थोडी सी जगह ले लेवेंगे, उन का पडोस भी अच्छा है. मैं ने सुना है कि वह घरबार सहित आये हुए हैं.

जान्हवी०:—हां है तो ठीक, हो सके तो स्नान पूजा से निबट अपनी उदर पूजा भी पं. रामलाल से ही करा लेंगे.

मनो०:—ज्यादः यारी मत गांठो, चलना हो तो उन का डेरा वह ऊंचा (उंगली से दिखाता हुआ) सा है पर शायद उन

के डेरे में तुम धूम्रक्रिया का प्रयोग न कर सकोगे, हां छिप छिपा कर कहीं... ....हां २.........१,२ दिन की तो बात ही है.

[इतना कहते २ डेरा आ गया, पं. रामलाल से स्वागत पा दोनों एक तकिये के साथ फ़र्श पर बैठ आराम कर, पुनः गंगापर जा स्नान पूजा कर]

मनो०:—क्यों अब क्या विचार है, चलो, मिट्ठूलाल की दुकान आई है वहीं गरमागरम पूरी और मिठाई उड़ेगी और वहीं से बाज़ार और मेले की सैर करके फिर शाम को उसी दुकान पर डटेंगे, डेरे पर चलोगे तो पं. जी भोजन का आग्रह करेंगे.

[दुकान पर जा, खा पी सैर को निकल पड़े और जाते २ एक जगह आदमियों का गोल देख वहां जा खडे हो गये.

म०:—जान्हवी! समझे!!! तुम्हें भी कभी अपने हिन्दू धर्म की भलाई की सूझी देखो यह भलामानस हिन्दुस्तान की रज से बना और गीत गा रहा है ईसू के. कृष्ण भगवान् और श्रीमद्भागवत की बेदहल निन्दा कर रहा है. इस की लियाक़त तो देखो, जान्हवी! यहां से चलो मुझ से यह नहीं सुना जाता, शायद मैं इस को कुछ कह बैठूं और फिर यह यहां का आना भूल जाय.

(इतनी कहते २ वहीं भूरा चमार अपने साथियों सहित आता दिखाई पडा उन में से दो के पास दोने में जलेबी बंधी हुई हैं एक के पास पतले कांच की शीशी में गंगाजल भरा है.)

म०:—अरे जान्हवी! वह देखो तुम्हारे साथी आगये तुम उनसे बिछुड कर अकुला रहे थे आख़िर तुम्हारे प्रेमने उन्हें मिला ही दिया.

जा०:--रहने दे यार, मैं काहे को अकुलता, तुझे ही यह बड़े प्यारे लगते हैं, मैं तो योंही पूंछता था.

म०:--क्या हरज है, हिन्दूधर्म को दिल से माननेवाले मुझे तो ज़रूर प्यारे लगते हैं.

भूरा०:--राम्राम् साहब राम्राम् !!!

मनो०:—राम राम, क्यों बुड्ढे तुमने फिर ढूंढ लिया, लो सुनो, भोग सुनने हैं तो यहां सुनो, नहीं तो रवन्ना कराओ.

भू०:—क्यों है क्या जो आप रवाना होने को कहते हैं. (उपदेशक की ओर नज़र जा पड़ने पर) ओहो, यह तो हमारे एक रिश्तेदार चौधरी का लड़का है, पहिचाना रे पहिचाना, बड़ा नालायक निकला, देखो मैं इस से रुख मिलाता हूं (उस की ओर घूर कर थोड़ी देर बाद) अरे कलुआ! कलुआ!! 'राम्राम्' तो ले ले चुन्ना के!!!

उपदेशक:—ओ वॅल, हम कलुआ नहीं हमारा नेम 'ब्लेकवुड्' हये, रॅाम् रॅाम् नहीं, गुड्मॉर्निंग टुम हम को बोलो.

भू०:—ओ हो, यह तो नहीं पर इस का मिज़ाज चौथे आसमान पर ज़रूर पहुंच गया, अरे तू कलुआ न सही पर चुन्ना का बेटा तो है न! हम लोग बैल ही सही पर तू बैल का फेशनेबल बेटा तो खरा कि नहीं.?

उप०:—चूना कौन होटा हये, हम पादडी साहब है.

भू०:—अरे तेरा भला हो, चुन्ना विचारे की तभी किस्मत फूटी जब इसे उजली चमडी का लालच पडा, मैं पूंछता हूं कि तेरा बाप कौन है, हमें पहिचाना कि नहीं?

उप०:—हम लोग का बाप वोई हये जो सब लखकट का, हम सब को अेई उपडेश डेटा हये कि उस के वेटे बनो.

भू० बु०:—[मनोहर की ओर देख कर] देखा भाई साहब करम फूटा कि नहीं, अरे अपने बाप को बाप कहने को तय्यार नहीं, जीभ को खाते २ कभी कांटा लग गया मालूम होता है, कोई बात ठीक ही नहीं निकलती, सब को बिना बाप का बनाना चाहता है, इसने तो चुन्ना को भी चूना लगाया जिस के खून से बना, अब इससे मा, बहिन और नातेदारों की तो बात ही क्या करूं.

जान्हवी०:—अरे भाई बुड्ढे! जो हुआ सो हुआ, इस भले आदमी से तो अब तुम्हें बातों से भी दूर रहना ही ठीक है.

मनोहर०:—जान्हवी को तो इन बातों से भी घबराहट है, भला वह अपनी पुरानी बातें पूंछते हैं तो तुम्हें क्या दुःख है पूंछने दो. और आंखें खोलो जो अपने भाई विधर्मी हो रहे हैं.

जान्हवी प्र०:—बात यह है कि यह लोग हठी और दुराग्रही होते हैं. व्यर्थालाप से क्या, चलो अपने और जगह की सैर करें. यह मुझे भी दुःख है कि इस ने धर्म छोड दिया.

[मनोहर उपदेश को एकान्त में ले जा कर कुछ चुपके २ कहता रहा और उपदेशक की यह कथा सुन आंसू भरलाया कि " भाई साहब मैं सब समझता हूं पर क्या करूं अधभूके पेट, नंगे शरीर, जमींदारों की बेगार वर्षों तक इस मांसरहित शरीर पर जूते कोडे खा२ कर करी. उस पर भी तुर्रा यह कि घर में किसी २ दिन वह अधपेट सूखी रोटी भी न मिले. बताईये फिर मैं पशु से तो अच्छी दशा में हूं, पेट पापी के भरे विना धर्म, कर्म कुछ नहीं सूझता " उपदेशक की इन बातों से मनो० की आंख डबडबाई हुई आंखें टपटप बहने लगीं, जान्हवी की जल्दबाज़ी से लाचार की सी दशा में वह उपदेशक जी से " फिर अवश्य मिलूंगा " कह कर बिदा हुआ और बडी देर तक उदास रहा. जान्हवी मनो. की बाँह पकड कर ले चलता है और दोनों थोडी देर मेंफिरते २ एक सन्यासी की कुटिया पर पहुंचते हैं. इधर भूरा बुड्ढा भी उपदेशक को धिक्कार कर अपना रस्ता नापता है. संन्यासीजी के चारों ओर बैठे हुए लोग धर्मचर्चा कर रहे हैं. एक किनारे पर यह दोनों भी जा बैठते हैं और महात्मा जी की बातें सुनने में कान लगाते हैं.]

जा०:–मनो० ! तुम हो बडे डटे, कहां की दोस्ती निकल आई मुझे भी तो सुनाओ छिपाने का क्या है.

म०:—देश की दरिद्रता और क्षयका रोना तुझें भी सुनाऊंगा. (उपदेश समाप्तिपर) जान्हवी ! लो तुम नहीं मानते थे देखो महात्मा जी भी यही कहते हैं कि सब का पंचभूत का नाशवान् शरीर है. प्राणिमात्र पर दया करो, परमात्मा एक समान व्यापक है " आत्मवत् सर्व भूतेषु " का ठीक अर्थ महात्माजी से कान खोल कर सुन लो, सुना दया का अर्थ ? तभी मैं कहता था कि नहीं कि यह चमार भंगी

विधर्मी हो कर गोहत्या करते हैं, सो इन्हें अपने धर्म का ठीक २ अधिकारी बनाओ. तुम्हें छूने की ही पडी है. और इधर देश से दया, धर्म उठा जा रहा है.

जा०:—भाई आज तो मन की बड़ी २ गांठें खुल गई. यह ठीक ही है कि महात्माओं के संग से हृदय की ग्रन्थि सुलझती हैं.

मनो०:—समय बहुत हो गया चलो सन्ध्या कर के भोजन करें.

[दोनों गंगातट पर दूर एकान्त में जा कर शौच सन्ध्यादि से निबट डेरे की ओर चलने लगे. चांदनी खिलने पर मेले की सुविशाल सडकें मन को भार ही हैं. दोनों भोजनार्थ एक सजी हुई दुकान पर पहुंचे]

मनो०—[दुकान में बारीकी से नज़र डाल कर] यहां तो खाने का धर्म नहीं पूरी बेलने वाला तो कहार है ही, सेंकने वाला भी.

जान्हवी:—सो क्या अपने यहां कहारों के हाथ की सभी बाबू लोग खाते हैं.

दुकानदार:—आइये बाबू साहब ! हुकम करिये

मनोः०—कहारों का माल हमें नहीं चाहिये. जान्हवी ! क्या तुम रिवाज के ही दास हो, तुम नहीं जानते कि यह कहार चमारों की तरह आदमी से भी बड़ी २ मछलियां चीड़ते फाडते रहते हैं. कहां तो उस बुड्ढे के मेरे पास बैठने से तुम घबराये और कहां खुद यहां इन गन्दों के हाथकी खाने को तय्यार हो ?

जा०:—अरे भाई यही लोग तो अपना पानी भी भरते हैं.

म०:—फिर वही, भरने दो, हम रिवाज के कीड़े नहीं, तुम्हें महात्मा जी के उपदेश से भी कुछ लाभ नहीं हुआ. क्या भूल गये उन्हों ने जो यह कहा था कि "लोग स्वच्छता अर्थात् शौच धर्म को भूल गये हैं. इस से देश में रोग और निर्बलता तरह२ की हो रही है." क्यों भाई दुकानदार? क्या यह मिठाई भी कहारों के हाथ की है?

दुका०:—नहीं बाबू साहब, क्या फ़र्माते हैं, भला ऐसा हो सकता है, फ़र्माइये कितनी तोल दूं?

म०:—देशी शक्कर की है या विलायती?

दुकानदार०:—आप को किस की चाहिये की?

मनो०:—देखा जान्हवी! हलवाई महाराज कैसे चालाकी के हाथ फेंक रहे हैं. देशी होती तो तड़प के न जवाब देते. कहारों के हाथ की न होती तो ऐसा गोल २ जवाब क्यों देते, न मालूम यह कितने लोगों को धोका देते होंगे.

जान्हवी:—असल में हमें स्वच्छता और शुद्धि का पूरा २ विचार अवश्य करना चाहिये. लोगों ने स्वच्छता भी रिवाज के हाथ में दे दी, चलो किसी और दुकानपर.

[दोनों एक दुकान पर जा भोजन कर पं. रामलाल के डेरे पर शयनार्थ पहुंचे और पं. रा. ला०जी से सब प्रकार का स्वागत पा रात्रि भर विश्राम किया. सवेरे ही फिर स्नान सन्ध्या से निबट स्टेशन पर पहुंच टिकिट

ले प्लेटफार्म पर पहुंचे, मेले के वापसी की ज़बरदस्त भीड से कन्धे से कन्धा लड रहा था.]

मनो०:—जान्हवी ! मित्र कहीं खो नहीं जाना, नहीं तो मुझे तुम्हारे घर वालों की चिन्ता है, जाने क्या कहें, लो गाडी की घंटी हुई अब दो चार मिनिट में ही आती है.

जान्हवी०:—(गाडी आने पर) मनोहर! आज तो भेडों का रूप धारण करो, यह देखो सब माल गाडी आदमियों से ठसाठस है.

मनो०:—अपनी फिकर करो, मुझे क्या है, "सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेहनानास्ति किंचिन" महात्मा जी के यह वचन भी याद हैं. मैं तो अपवित्र को पवित्र कर दूंगा न कि मैं उस से अपवित्र हो जाऊं.

जान्ह०:—(अकस्मात् भूरे बुड्ढे के आ जाने पर मनोहर के प्रति मन्द स्वर से) मनो० ! बुड्ढे यहां भी पहुंच गये.

मनो०:—सो क्या अब भी तुझे कुछ शंका बाक़ी है. क्या महात्मा जी का मनुस्मृति का वचन "बुद्धिमत्सु (प्राणिषु) नराः श्रेष्ठाः" भूल गये, इस वचन से जो तुमने टायगर पाला है उस से यह भूरा अधिक उत्तम है.

जा०:—हां २ मैं भी समझता हूं. मैं तो यह कहता था कि देखो यह अपना साथ निभा रहे हैं.

मनो०:—जान्हवी ! मैं तो श्वास रोकते २ हैरान होगया, अब इस सके की मशक का पानी पी कर मारवाडी हुआ जाता हूं-

जा०:—वाह २, ऐसे मारवाडी बननेसे ज़रा और प्यास रोकना ही ठीक है. मैं अभी लोटा डोरीसे दौड कर पानी ला तुम्हारी तृषा शान्त करता हूं, इन वातों से बचने के लिए मैं ने एक दिन भूखेपेट रात बिताई और अपवित्र शक्कर की मिठाई नहीं खाई.

मनो०:—(लायेहुए पानी से प्यास बुझा कर) पर तुम देशी शक्कर और गुड को भी कैसे पवित्र मान सकते हो यह भी प्रायः चमारों के हाथ की बनी होती है.

जा०: —पर इसमें अशुद्ध वस्तुएं तो नहीं होती.

म:०—चलो इतना भी बहुत है कि देशी चमारों के हाथकी कुछ खाने वाली चीज़ों को पवित्र मानने लगे.

जा०:—जो कछ हो सब तुम्हारे ही प्रसाद का फल है, गुरु तो तुम्ही बन बैठे हो.

म०:—अरे मित्र काहे को घबडाते हो, यात्रा और युद्धादि के आपद्धर्म की विधि में यह बातें आ जाती हैं. ऋषि विश्वामित्र चाण्डालिनी के घर जा कर कुत्ते का मांस खा कर जब हिन्दू बिरादरी से नहीं निकले तो हमें तुम्हें कौन निकाल सकता है. [गाडी आ गई जैसे तैसे सब टकापसेरी ही के भाव में जहां सींग समाये बैठ गये.]

जा०:—मुझे तुम्हारे इस सत्संग से कई समाधान हो गये, देखो अपने मित्र प्यारेलाल ने अपनी ‘ पपी ’ के व्याने पर कि-

तनी सेवा की, उस के पिल्लों को भी कितने प्यार से प्याला. क्या कोई ऐसी प्रसूता की सेवा करेगा, अब उन की एक बिल्ली भी ब्याने वाली है. पर एक पिल्ला मर गया, बडे शोक से उसे खुद घर में से बाहर ला कर फेंकने को भंगी को दिया. और रात को रोटी तक नहीं खाई, बिचारे ने एक महीने पिल्लों का पाखाना खुद साफ़ किया, यह दयाभाव कितना अच्छा है.

मनो०:—तुम समझे क्या मेरा सिर ? असल बात तो इस में रह ही गई, देखो यदि शौक नहीं और वह दया भाव से ही यदि इतनी प्रसूता कुत्ती और उस के बच्चों की सेवा करता है तो क्या भूकों मरती किसी नीच अधम प्रसूता स्त्री की सेवा नहीं कर सकता, खुद उस के मुहल्ले की ऐसी कई स्त्रियां टूटे पेटों पवित्र हिन्दू धर्म को छोड विधर्मी हो गईं और पारसाल दो तीन दस २ बीस २ दिन के बच्चे छोड मर गईं, वह बच्चे ईसाई अनाथालय में सुरक्षित किए गये, तब प्यारेलाल की दया कहां गई थी, वह तो शौकीन है. उस का धन कुत्ते बिल्ली और कबूतरों के लिए ही है. अब तो तुम सोचो कि इसने भंगी तक को मात किया कि नहीं और वैसे चमार अशुद्ध है, वाहरे पाक. जान्हवी ! बेशक ऐसी ही सेवा मनुष्य जाति की करे और उपयोगी पशुओं की भी और फिर सारे जहान के कीडे मकोडों की. एक शहर के एक पिंजरापोल में सैकडों सड़े कुत्तों को भोजन दिया जाता है और वहीं कितने ही आदमी

भूखे पेटों धर्म छोड़ चुके, कितने ही मर भी गये. भला यह कैसी दया. ? घर में आग लगी हो तो पहले क़ीमती वस्तु के बचाने का उपाय किया जाता है न कि कूड़े कर्कट का.

जा०:—है तो ठीक, अपने लोग विचार से काम नहीं लेते, देखो लाला बैजनाथ के दोनों लडके कॉलेज में पढने २ में ही रोज़ कई मेंडक चीर डालते हैं, कई कबूतरों की जान भी सहज में ले ली, दया तो भाड में गई उलटा यह चमरकाम सीख कर लाला पनकी शेखी बघारने से बाज़ नहीं आते चमार में और क्या सींग लगे हैं.

मनो०:—हां, हां, हां, अब तुम समझे यही तो बात है, देखो वह उन बुड्ढे डाक्टर जी की लडकी जिस के बच्चा पैदा हो उस के घर झट पहुंच जाती है प्रसूता की सेवा करने वाली बेचारी खटकिन भंगिनों का रोज़गार ही बंद करने लगी है. उस को सब छू सकते हैं. बड़े२ घरों में पुजने लगी है, हमारा तो यही कहनाहै कि जब ऐसे२ लोग अशुद्ध नही तो इन सेवा करनेवाले शूद्रों का क्या मौरूसी अपराध है ?

[चलती हुई गाडी में ज़रा दूर बैठे हुए भूरे बुड्ढे ने प्रेमासक्त होने से मनोहर और जान्हवी को ढूंढ लिया और ज़रा निकट आ बैठा]

भूराबु०:—क्यों साहब हमें भी कुछ सार वस्तु सुनाइये.

मनो०:—वाह बुड्ढे ! तुम भी हमारा पीछा नहीं छोडते, साथ ही हो. इतनी भीड में तुम को हमारे ही पास जगह मिली, अच्छा

कुछ हर्ज नहीं, पर मैं यह कहता हूं कि तुम्हें जो उपदेश की इच्छा है तो वहां मेले में महात्मा **सत्यप्रिय**जी के दर्शन क्यों नहीं किये ?

भूरा०—जब आप वहां एक तरफ बैठे उपदेश सुन रहे थे तब हम वहां भी पहुंचे हुए थे, और फिर दुबारा भी महाभारत की कथा वहां जा कर सुनी. महात्माजी बिलकुल अनोखे हैं, विना शंका के सब सच्ची २ कह देते हैं. एक बात उन्हों ने बडे ज़ोर की कही कि " आज कल की बिरादरियां पक्की स्वार्थमंडलियां हैं. धर्म्माधर्म्म के विचार विना मनमाने फैसले देती हैं इस लिये-ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक-सब में महा दुराचारी लोग भरे हैं. अगर मनु का कहा उन्हें दण्ड दिया जाय तो सब लोग जल्दी धर्मात्मा हो सकते हैं. रिश्वतखोर बिरादरियां धनाढ्य अनाचारियों को पंक्ति से बाहर किस बिरते पर निकाल सकती हैं." मैंने भी अबांठान ली है कि अपने चमारों में से शराब उड़ाने और मट्टी चट्ट कर जाने के रिवाज को जड़ से खो दूंगा, सब को भगवत् भगत बनाऊंगा.

[इतने में रास्ते के सब स्टेशन निकल गये और इन के उतरने का स्टेशन आ गया, गाडी खडे होते ही सब के साथ यह भी उतर कर टिकिट दे बाहर हुए भूराबु० भी राम २ कर फिर घर आकर मिलने की ठहरा कर अलग हुआ, पर इतने में भीड के कारण उस के हाथ की कांच की गंगा जली टूट गई बिचारा शोकार्त्त धीरे २ अपने साथियों में जामिला]

मनो:—जान्हवी ! तुम्हें तो घर याद आरहा होगा इस लिए बैठक में नहीं चलोगे, मैं तो बैठक पर जाता हूं सवेरे जल्दी बैठक

पर आना फिर हम उस कथा कराने का रोज़ का इन्तज़ाम करेंगे, उपदेशक की वह सब बातें कल ज़रूर सुनाऊंगा और उस बात का भी प्रबन्ध स्वामी जी से मिलकर करेंगे. मेरे आज जो धर्मक्षय का कारी घाव हुआ है वह न मालूम कब भरेगा.

जान्हवी:—अच्छा जाता हूं राम राम धैर्य से सबहोगा.

मनो०:—राम राम, सवेरे जल्दी आना और कुछ ज़रूरी बातें सोचेंगे.

[दोनों अपने २ घर का मार्ग पकड कर अलग होते. हैं]

पाठक उपर्युक्त वार्त्ता में वस्तु स्थिति का वास्तविक तत्व अच्छी तरह पा सकेंगे. अब हम शास्त्रीय प्रमाण और ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकृत विषय पर संक्षिप्त विवेचन करेंगे.

[रूढि समाप्त]

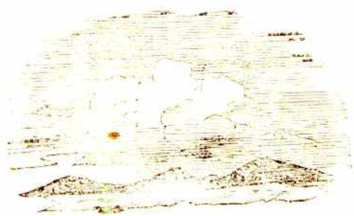

प्रमाण और इतिहास.

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः, ब्रह्म राजन्याभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥ यजु० अ० २६ मं० २.

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि, शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ भगवद्गीता अ० ५-१८.

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्तिनप्रियः ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ॥ मांहि पार्थ ! व्यपाश्रित्य येऽपिस्युः पापयोनयः, स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ भगवद्गीता अ० ९ श्लो० २८-३२.

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥ म० १०, ६३.

[(परमेश्वर कहता है कि) जैसे मैं सब मनुष्यों के लिए इस कल्याण-अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख-देने वाली ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का उपदेश करता हूं वैसे तुम भी किया करो. जैसा कि मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अतिशूद्रादि के लिए भी किया है. विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता और कुत्ता आदि को पकाकर खानेवाले चाण्डाल आदि में पण्डित लोग समान दृष्टि अर्थात् समान सहानुभूति रखते हैं. (श्रीकृष्णजी परमात्मभाव से कहते हैं कि) हे अर्जुन ! मैं सब भूतों में सम हूं (अर्थात् विषम नहीं.) न मेरा कोई द्वेष करने योग्य है न प्यारा, किन्तु जो मुझे भक्ति से भजते हैं वे मुझ में हैं और मैं उन में. मेरा सहारा ले कर जो पापयोनि भी हैं-निस्सन्देह वे परमगति (मोक्ष) को प्राप्त होते हैं. हिंसा न करना, सत्यपालन, चोरी न करना, स्वच्छताप्रिय होना और इन्द्रियनिग्रह अर्थात् ब्रह्मचर्य रूप तप का सेवन इन पांच कर्त्तव्यों का पालन रूप धर्म संक्षेप में चारों ही वर्णों के लिए मनुमहाराज ने कहा है.]

शुश्रूषा का स्वर्गीय महत्व.

दासकर्म शुश्रूषा को आज न मालूम क्यों हेच माना जाता है. प्राचीन काल में सेवाधर्म अधम नहीं किन्तु तपश्चर्या का अंग माना जाता था "स्वयंदासास्तपस्विनः" इस वचनपर लोग लट्टू तो हो जाते हैं पर यह नहीं विचारते कि अपनी सेवा स्वयं करना तपस्वियों का धर्म था और है. रूस के त्यागशूर, त्यागमूर्ति स्वयंदास महात्मा 'टॉल्सटायि' को ऋषि पदवी देते हुए यह भी ध्यान नहीं आता कि शुश्रूषा का कितना माहात्म्य है. शुश्रूषाधर्मी शूद्र के प्रति न मालूम अधम भावना कहां से घुस गई है. मनु जी तो लिखते हैं कि *"वेदवेत्ता कर्त्तव्यनिष्ठ यशस्वी गृहस्थ विप्रों की शुश्रूषा शूद्र का वह धर्म है जो कि उच्चतम मोक्षादि पदवी की प्राप्ति का कारण है" महाभारत शां० अ० २३७ श्लो० १२ में 'परिचारयज्ञाः शूद्राश्च' वचन है, परिचर्या यज्ञ है उस यज्ञ का कर्ता शूद्र है. शुश्रूषा का रहस्य तभी ठीक अनुभूत होता है जब कि भंगियों की हडताल

---

* विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्। शुश्रूषैवतु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः॥ अ० ९, ३३४. (शूद्रस्य पुनर्वेदविदां गृहस्थानां स्वधर्मानुष्ठानेन यशो युक्तानां ब्राह्मणानां या परिचर्या सैव प्रकृष्टस्वर्गादिश्रेयोहेतुर्धर्मः, कुल्लूक भट्ट)

टिः—सेवा में सेवक को कष्ट पहुंचता है. स्वयंदास तपस्वी ऋषि अपने कारण किसी को कष्ट देना उचित नहीं समझते. सेवक यद्यपि कष्ट उठाता है पर सेवा से सुख का दान करता है अतः सुख पाता है, इसी भाव को ले कर मनु० में शूद्र का शुश्रूषा धर्म 'नैश्रेयस' लिखा गया है.

से नगर सड़ उठते हैं. और महामारी की आशंका से रोमाञ्च होने लगता है. जब किसी कारख़ाने के मज़दूर काम छोड बैठते हैं तब भी सेवा का महत्व सूझने लगता है. प्राणान्त करने वाले महारोगों से ग्रस्त रोगी के अन्तःकरण से वमनादि उठाने वाले अपने परिचारक के लिए उपकार और कृतज्ञता प्रदर्शक असंख्य आशीर्वचन स्वभावतः निकल पडते हैं, इसी प्रकार वैद्यादि के लिए भी, क्यों नहीं, जब कि वह अत्युपकृत हुआ है. आज कल प्रसूतागारों में नर्स और मिडवायफ पद्धति से कामकरनेवाली दाई के लिये लोग कुर्सी ले कर खडे हो जाते हैं; उन्हें अनेक प्रकार की डाली आदि से सम्मानित करते हैं, यही नहीं किन्तु हृदय से भी उन के लिए यह शब्द निकलते हैं कि 'ईश्वर तुह्मारा कल्याण करे, यह सब क्यों ! इसी लिए कि उसने प्रसूता की समुचित और सुखदायिनी सेवा की है. कर्मसिद्धान्त के अनुसार भी उसे इस के बदले सुखपुञ्ज प्राप्त होना ही चाहिये. मनु जी के उस ' नैश्रेयस ' शब्द से इस का मेलान कीजिये. सेठ जी और बाबू साहब का नौकर जब कारण-विशेष से नौकरी छोड़ बैठता है तब वह कैसी अपनी असह्य वेदना सुनाते हैं. धोबी, नाई, मोची, हलजोतने वाले, कहार, बढई, लुहार आदि सभी से सम्बोधन में खुशामदभरे 'भाई' आदि शब्दों का उपयोग मुंहभर करते हैं, बतलाइये कि यह ' भाईपना ' कहां से आया ! स्वार्थवश ही नहीं किन्तु वस्तुतः यह ' भाई ' का प्रयोग

समुचित है क्योंकि यह लोग भाई और माता की सी परिचर्या करते हैं. अनुभूतविषय राजर्षि भर्तृहरि ने भी कहा है कि " शीतोष्ण, सुखदुःख आदि द्वन्दों में समबुद्धि रखनेवाले तपोनिष्ठ योगियों को भी परमगहन सेवाधर्म अगम्य है. " प्लेग के रोगी की सेवा और प्लेग के मुर्दों का दाहादि अपने हाथों करने वालों की ओर निहारिये, स्पर्शजन्य प्राणहारी रोगों में वह अपनी जान हथेली पर धर कर सेवा करते हैं. उन्हें इसी से ' देशरत्न ' का स्वर्णपदक जनता से मिला करता है. शैशव में जननी आत्मज का मलमूत्र उठा कर फेंकती ही नहीं प्रत्युत अपनी शय्या में कभी २ उस से लथपथ भी हो जाया करती है. केवल अपत्यस्नेह ही उस कार्य में उसे विवश नहीं करता किन्तु उस परिचर्या को अपना धर्म भी समझती है. विभवसम्पन्न माताएं इस परिचर्या को स्वयं न करते हुए अन्य परिचारिकाओं से कराती हुई इस बात का प्रमाण दे रही हैं कि मलमूत्र सम्बन्धिनी परिचर्या स्नेहवश ही नहीं की जाती, नहीं तो वह अधिकारसम्पन्न होते हुए अन्य भृत्यादि को क्यों करने देवें ? असमर्थ शिशुओं का पालन पोषण अपना धर्म समझ कर इस (लोगों की समझ में अधम) परिचर्यात्मक कर्त्तव्य को पालती हुई माताओं ने ही गुरु और पिता से भी बढ़ कर गौरव और उच्चपद हस्तगत किया है, मनुजी लिखते हैं कि " उपाध्याय से दशगुण आचार्य, आचार्य से शतगुण पिता, पिता से हज़ारगुण माता गौरवपात्र अर्थात् सम्माननीय है." (२,

१४५) यद्यपि ज्ञानादि की प्राप्ति गुरु आदि से ही विशेष होती है. इस महत्वपूर्ण परिचर्या धर्म को कोई माता यथावत् नहीं पाल सकती तो उस के सन्तान के दर्शनमात्र से लोक उसे अभागी और उस माता को 'फूहड' का प्रमाणपत्र देने लगते हैं. नौकरों की हडतालों के समय भी वही भाग्यहीनता दर्शन देती है. उन पालक पोषक परिचारकों की अकृपा होने पर फूहड के पुत्र की सी दशा कुरूप धारण कर आ उपस्थित होती है. आजकल की ' स्वयंसेवक मंडलियां ' मेलों, पर्वों, उत्सवों, दुर्भिक्षों और प्लेग आदि के प्रकोपों में देश के दुःखपीडितों की सब प्रकार की सेवा करती हुई इस शुश्रूषाधर्म का उच्च पवित्र भाव अच्छी तरह व्यक्त कर रही हैं. माननीय गोखले जैसे सेवावीरों के श्रम का फलरूप ' सर्वेंट ऑफ़ इंडिया सोसाइटी ' जैसी महती संस्थाएं स्थापित हो कर इस शुश्रूषाधर्म के महत्व का वर्णन अपने आचरण से भारतवर्ष को सुना रही हैं. पाठक! इतने से शूश्रूषारूप शूद्रधर्म की बहुमूल्यता को भली प्रकार समझ गये होंगे, वास्तव में इस शुश्रूषा के विना किसी को सुख नहीं मिल सकता. इसी भाव से इस के लिए ऊंचे से ऊंचा शब्द मनु जी ने ' नैश्रेयस धर्म " कहा है. याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा के शुश्रूषा प्रकरण का स्वाध्याय कीजिये, उस में शुश्रूषु पांच माने हैं * १–शिष्य, २–अन्तेवासी, ३-

शूद्र की पोज़ीशन. चारों वर्णों का समान धर्म.

* शिष्यान्तेवासि भृतकश्चतुर्थस्त्वधिकर्म कृत्, एते कर्मकरा ज्ञेया दासास्तु गृहजादय

वेतन लेकर काम करने वाला, ४-काम करने वालों पर व्यवस्था और निरीक्षण करने वाला अधिकारी और ५-दास. इस वचन में भी शुश्रूषा धर्म और उस के करने वालों को ब्रह्मचर्य व्रत धारण करने वाले शिष्यादि के समान उच्च पंक्ति में गिना है. शुश्रूषाधर्मी लोगों के सम्मानपात्र होने की पुष्टि में मनु जी का उपर्युक्त 'अहिंसादि' श्लोक विचारिये जिससे सिद्ध है कि इन पांच उच्च कर्त्तव्यों का सेवन बिना ऊंच नीच भाव के चारों वर्णों का समानधर्म है अर्थात् द्विजों के समान वहभी इन पांच का सेवन करें. मिताक्षरा के ' साधारण धर्म ' प्रकरण में यहां तक लिखा है कि "एते सर्वेषां पुरुषाणां ब्राह्मणाद्याचाण्डलान्तं धर्मसाधनं" यह अहिंसादि ब्राह्मण से चाण्डालतक सब के धर्मसाधन हैं. ऐसा ही व्यास* जी भी वर्णों का यह समानधर्म बतलाते हैं शुक्राचार्य जी कहते हैं कि ब्राह्मणादि वर्णसंकरों सहित सब मनुष्य एकत्र २ रहते हैं और वेद से विरुद्ध प्रमाण मानने वाले यवन पश्चिम उत्तर में रहते हैं " जिसने उन पांच व्रतों का पालन किया हो वह किस प्रकार अधम और पतित कहा जा सकता है ! इन में से केवल एक सत्य +ही पर्य्याप्त है. उस के सेवी को तपस्वी

* अहिंसा सत्य मस्तेयमकाम क्रोधलोभता, भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णकः (व्यासः) स संकर चतुर्वर्णा एकत्रैकत्र यावनाः । वेद भिन्नप्रमाणास्ते प्रत्युगुत्तरवासिनः ॥ शुक्रनीति, ४–३५

+ सत्यान्नास्ति परो धर्मः नानृतात्पातकम् परम् ।

कहना चाहिये, प्रत्युत मनु जी लिखते हैं कि "*जो यमधर्म रूप (१ अहिंसा २ सत्य ३ अस्तेय ४ ब्रह्मचर्य ५ अपरिग्रह) को न करता हुआ केवल नियमधर्म (१ शौच २ सन्तोष ३ तप ४ स्वाध्याय ५ ईश्वरप्रणिधान) को ही करता है वह पतित होता है. " इस से शूद्रों की हैसियत (पोज़ीशन) और भी साफ झलक जाती है. जैसा कि ऊपर कह चुके हैं कि अहिंसादि चारों ही वर्णों का धर्म है और इस से स्पष्ट होता है कि वह अनादरभाव से देखे जाने योग्य कदापि नहीं. महर्षि पाणिनि, महर्षि पतञ्जलि और श्रीमत्कैय्यट जी भी इसी विषय को विशेष विषद करते हैं वह शूद्रों को यज्ञ करने का भी अधिकार देते हैं. अर्थात् वह हमारे पात्रों में यदि भोजन कर लेवें तो वे पात्र द्विजों के खाये हुए के समान मांजने से शुद्ध भी किये जा सकते हैं. वह प्रमाण यह हैं. 'शूद्राणामनिर्वसितानाम्' (अष्टा०) अर्थात् न निकाले हुए शूद्रों का द्वन्द्वसमास एकवचन में होता है, जैसे तक्षायस्कारम्, रजकतन्तुवायम् शकयवनम्. यहांपर महाभाष्यकार पूर्वोत्तरपक्ष से ऐसा लिखते हैं कि "कहां से न निकाले हुए ! (उ०) आर्यावर्त से, यदि-आर्यावर्त से न निकाले हुए " यह सूत्रार्थ होगा तो 'शकयवनम्' यहां द्वन्द्वसमास को एकवचन नहीं होना चाहिये क्योंकि शक और यवन लोग

* यमान् सेवेत सततं न नियमान् केवलान् बुधः । यमान् पतत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ॥ मनु० अ० ४-२०४

आर्यावर्तीय नहीं अर्थात् आर्यावर्त से निकाले हुए हैं. ऐसी आशंका में पात्रों अर्थात् यज्ञीयपात्र तथा भोज्यपात्र से न निकाले गये हों ऐसा सूत्रार्थ समझना चाहिये ऐसा अर्थ करने से 'शकयवनम्' आदि सब उदाहरण सिद्ध हो जाते हैं क्योंकि इनके शूद्र होने पर भी यज्ञ करने का अधिकार और हमारे पात्रों में भोजन कर सकने का भी ओ अधिकार है " इसी का सारांश कैय्यट (महाभाष्य-टीकाकार) इन शब्दों में वर्णन करते हैं कि " शूद्राणांपञ्चयज्ञानुष्ठानेऽधिकारोऽस्तीतिभावः " अर्थात् शूद्रों को पञ्चयज्ञ करने का अधिकार है. ठीक तो है ऐसा न हो तो क्या उसके अतिथियज्ञ में अतिथि, अभ्यागत उस शूद्र गृहस्थी के घर न खा कर भूखे जायेंगे ? महाभारत (अनुशासनपर्व १६१–२५) में शूद्रके लिए ' अलुब्धेनानृंशस्यने ऋजुना ब्रह्मवादिना ' लोभरहित, दयालु, नम्र और ब्रह्मवादी विशेषण आये हैं. पाठक ! आजकल के नौकरों, मजदूरों और नाई धीमरों को जिस रूप में आप देख रहे हैं, इस रूप में द्विजों की सेवा करते हुए वे सर्वाङ्ग शूद्रत्व का पालन नहीं कर रहे और इसी लिए शूद्र शब्द के सुनते ही जो नीचत्व की कल्पना उत्पन्न हो जाती है वह ठीक नहीं. इस भाव से चित्त को हटा नितान्त शास्त्रीय दृष्टि से ही शूद्रत्व का पर्यालोचन कीजिये. मनु० (२–१३७) में ' सोऽत्रमानार्हःशूद्रोऽपि दशमींगतः ' इत्यादि कितना समान उदारतासूचक वचन है, इसकी टीका में कुल्लूक भट्ट जी

लिखते है ' " शूद्रोऽपि दशमीमवस्थां नवत्यधिकां गतोद्विजानामपि मानार्हः" अर्थात् ९० वर्ष की आयु से अधिक का शूद्र द्विजों का माननीय है. । आगे मनु जी लिखते हैं कि* " सब वर्णों की असूया (निन्दा) रहित सेवा करना ही प्रभु ने शूद्र का एक धर्म उपदिष्ट किया है " यहां पर इस ' असूयारहित ' शब्द पर तनिक गम्भीर दृष्टिपात की आवश्यकता है और यही शूद्रत्व की कठिन समस्या है. उस को यों समझिये कि आज कल के नौकर आदि प्रतिलक्ष कितने निकलेंगे जो सच्चे स्वामि सेवक हों, जो हार्दिकभाव से सेवा करते हों, जो ईमानदारी से चलते हों, जो कामचोर न हों, जो वस्तु चोर न हों, जो काम को बेगार न समझते हों. अनसूया युक्त मनुष्य को किस प्रकार घृणित दृष्टि से देख जा सकता है, प्रत्युत किसी अपरिचित व्यक्ति में इन गुणों को देख हम उसे मान दृष्टि से देखते हुए उस की प्रशंसा और प्रतिष्ठा करते हैं. और उतनी योग्यता का शूद्र विद्याभ्यास विना बन भी नहीं सकता. टीकाकार कुल्लूक भट्टजी लिखते हैं कि " इस श्लोक में (एकमेवतुप्राधान्य प्रदर्शनार्थम्) ' एक ' शब्द शुश्रूषा को ' प्रधानकर्म, बतलाता है, इस से भी उस के अन्य गौणकर्म यज्ञादि करने का पात्रत्व ध्वनित हो कर उस का बड़प्पन ही रहता है, नीचपन हरगिज़ नहीं. शूद्र चौथा वर्णी है इतना कहने में कोई पीछे नहीं हट सकता, वर्णोऽस्त्यस्य सः वर्णी=ब्रह्मचारी'

* एक मेव तु शूद्रस्य प्रभुःकर्म समादिशत् । सर्वेषा मेव वर्णानां शुश्रूषा मनसूयया.

इस व्युत्पत्ति से वह विद्याध्ययन करने वाला ब्रह्मचर्याश्रम सेवी सिद्ध है, वर्ण, को जाति से भी वर्णित किया है, जाति आचार्य के कुल में ही नियत होती थी. शूद्रजाति का निश्चय भी आचार्य के आधीन था जैसा कि मनुजी लिखते हैं कि* माता पिता कामवश हो इसे उत्पन्न करते हैं सो यह माता की कुक्षि से केवल उत्पत्ति मात्र है. वेद पार–दृश्वा आचार्य सावित्री द्वारा जो जाति नियत करता है वही अजर अमर अर्थात् सर्वथा माननीय है. " आगे कहते हैं कि § आचार्य का पुत्र, परिचर्या करने वाला (शूद्र), अन्य ज्ञान देने वाला, धार्मिक, स्वच्छ रहने वाला, आप्त अर्थात बान्धव, शक्त अर्थात् ग्रहण धारण करने में समर्थ, धन देने वाला, हितैषी, और कुटुम्ब का, इन दस को धर्म मे पढावे. इस से आगे के छठे श्लोक में रूपक बांध कर यह कहा है कि " विद्या देवी किसी अध्यापक ब्राह्मण से आ कर बोली कि मैं तेरी महा निधि हूं मुझे

---

* कामान्माता पिताचैनं यदुत्पादयतो मिथः ।
सम्भूतिं तस्य तां विद्याद्यद्योनावभिजायते ॥
आचार्यस्त्वस्य यां जातिं विधिवद्वेदपारगः ।
उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साऽजराऽमरा ॥ म० २–१४७, १४८

§ आचार्यपुत्रः शुश्रूषुर्ज्ञानदो धार्मिकः शुचिः, आप्तः शक्तोऽर्थदः साधुः स्वोऽध्याप्यादश धर्मतः ॥ विद्याब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेऽस्मि रक्ष माम्। असूयकाय मां मादास्तथास्याम् वीर्यवत्तमा ॥

अच्छी तरह रख, असूयक (निन्दक) के लिये मुझे मत दे जिस से मैं अधिक वीर्यवती होऊं." यही बात छान्दोग्योपनिषद् में कही गई है. शुक्राचार्य जी भी कहते हैं कि "चौथा× वर्ण शूद्रभी वर्णत्व से धर्म सेवी है" यहां पर विचारणीय बात यही है कि उन दश में शुश्रूषा-धर्मी शूद्र को पढ़ना धर्मकर्त्तव्य में माना है अथात् शूद्र विद्याभ्यासी विद्वान् अवश्य होना चाहिये, " असूयक को मुझे मत दे " यह शब्द तो शूद्र का आचार्य कुल वास सब से पहले ठहराते हैं क्योंकि शूद्र तो अपना धर्म **असूया रहित** प्रथम ही कर चुका अर्थात् असूयकता को पहले ही तिलाञ्जलि दे चुका, तब तो शूद्रत्व का अधिकारी बना और इस लिए विद्या देवी की उस नाराज़गी को दूर करने के लिए सच्चा भक्त बना. उन दस में " शक्तः " पद का अर्थ भी विशेष विचारणीय है. आज यह शंका बडे ज़ोर से की जाती है कि अधिकारी कौन है !

अधिकारपरीक्षा की गूढ समस्या

उस का समाधान इसी एक पद में ही आ जाता है जो ' शक्त ' अर्थात समर्थ हो. कुल्लूक भट्ट और मेधातिथि इस का अर्थ (ग्रहणधारणसमर्थः) " ग्रहण और धारण करने में समर्थ " और सर्वज्ञ नारायण भी ' ग्रहणधारणशक्तिमान् ' लिखते हैं. सो सर्व नितान्त ठीक हैं. दुष्काल, जलप्रवाह, भूकम्प आदि महाभयङ्कर आपात्तियों में यथातथा प्राणों की रक्षा होजाने पर भूले

× शूद्रोवर्णश्चतुर्थोऽपि वर्णत्वाद्धर्ममर्हति

भटके अज्ञातकुल असंख्य बालकों का सौभाग्य का उदय हो कर विद्यादि प्राप्ति का प्रसंग आवे तो तब वहां मनु जी का यह 'शक्त' पद ही उन का कल्याण कर सकता है, यही अधिकारी और पात्र की ठीक परीक्षा है. 'बदायूं' शहर में एक नाई विद्यार्थी ने संस्कृत की योग्यता प्राप्त करने के अनन्तर बि. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की है जो अच्छे वेतन पर अब अध्यापक का कार्य सम्पादन कर रहा है. बड़ोदे के एक महार (चमार) ने श्रीमन्त महाराज बडोदा नरेश की कृपा से विलायत में जा कर अर्थशास्त्र का उच्च अभ्यास किया है. और कई भंगी चमार मास्टर, डेप्युटी तक का काम संपादन कर रहे हैं. इसी प्रकार भारत में शूद्र पंडित जहां तहां प्रायः सुने गये हैं जो उपर्युक्त ' शक्तः ' शब्द की व्याख्या अपनी समर्थता से कर रहे हैं. आजकल सर्कारी कर्मचारियों में यह नियम पाला जाता है कि जो जब अपनी जिस वेतनवृद्धि (ग्रेड) पर आने का अधिकारी होता है तब न्यायानुसार उस उच्च पद पर चढा दिया जाता है; ऐसी दशा में उस खाली हुई नीची जगह (पोस्ट) की पूर्ति की चिन्ता से उस की उन्नति में बाधा नहीं डाली जाती. उस खाली स्थान की पूर्त्ति उस के समान योग्यतावाले मनुष्य के मिलने पर करली जाती है, ' भंगी चमार पढ लिख जायेंगे तब उन का काम कौन करेगा इस का समाधान इस ग्रेड के दृष्टान्त से अच्छी तरह हो जाता है. कौन अधिकारी है कौन अनधिकारी है ?

इस का समुचित निर्णय 'शक्त' शब्द के उचित विवेचन से कर लिया जाता है. भारत के कर्ण, विदुर, विश्वामित्र, पराशर, वसिष्ठ आदि बहुत से आदर्श व्यक्तियों की उत्पत्ति और जर्मनी आदि में अनेक संस्कृत अंग्रेजी आदि के धुरन्धर विद्वानों की सत्ता इसी प्रमाण की महत्ता है. अप्रेल सन १९१६ के अंक में मराठी के प्रसिद्ध मासिक पत्र "नवयुग" के सम्पादक महोदय लिखते हैं:—"समाचारपत्रों के पढ़ने वालों के लिये 'लायड जार्ज' का नाम नया नहीं है यह उन चतुर कर्णधारों में एक हैं जिन्हों ने ब्रिटिश साम्राज्य का बेड़ा इस महासमर रूपी क्षुब्ध महासागर से बड़ी चतुराई से पार लगाने का भार अपने सिरपर लिया है......... जब हम लायड जार्ज के वंश का विचार करते हैं तो हमें वेणीसंहार नाटक के कर्त्ता नारायणका कर्णमुख से निकला आवेशपूर्ण उद्गार व्यक्त करने वाला श्लोक.* याद आही जाता है, जब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने कर्ण का कुल खोद निकाला, तव कर्ण ने उस ब्राह्मण—पुत्र को मुंहतोड़ जवाब दिया. उसने कहा, 'मैं सूत होऊं, सूत पुत्र होऊं, या चाहे जो होऊं, इसस किसी को क्या? विशेष कुल में पदा होना किसी के हाथ में नहीं है. हां पौरुष पराक्रम के सम्बन्ध में कोई मुझ से पूछे तो मैं जवाब दूं. इङ्गलैंड जैसे सुधरे देश में भी बहुशिक्षित

* सूतो वा सूतपुत्रो वा, यो वा को वा भवाम्यहम् ।
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तम् तुं पौरुषम् ॥

लोगों तक ने लायड× जार्ज को ' चर्मकारपुत्र ' कहकर निन्दा करने में कुछ उठा नहीं रक्खा पर चमारके घर पैदा हुआ वही लड़का अपने पौरुषके कारण आदर्श लोकनायक बन पांचों खण्डों के लोगों का आदरणीय और प्रेमपात्र हो गया है... ....यदि उस के चरित्रका बाल-पनसे अवलोकन किया जाय तो 'मनसि वचसि काये पुण्य पीयूषपूर्णः' यह कविवचन उस के म्बन्धमें लिखने के लिये बुद्धि आग्रह करती है।" जिस रंगरूट ने गिरने की परवाह न कर बेधडक घोडे पर बैठ घोडा भगा दिया वह अच्छी तरह सीख सकेगा अतःवह उस का पात्र है. आजकल जो प्रवेश परीक्षाएं होती हैं वह भी इस अधिकार की उचित व्याख्या कर रही हैं, कल्पना कीजिये कि एक आदमी आपके सामने खडा है वह गणित के कठिन से कठिन प्रश्नों को हल कर सकता है, संस्कृत आदि भाषाओं में उसकी अच्छी प्रवृत्ति है. वह ईश्वर के गुणों पर विह्वल, प्रभु के गुणगान में लीन और भगवद्भक्ति में लौ लगाये हुए है, फिर भी उसे इन विषयों का अनधिकारी बताना क्या अर्थ रखता है. उस ने तो अधिकार प्राप्त कर लिया वह विद्वान्, वीर, ईश्वरभक्त हो गया; पर एक आदमी यही कहे जाता है कि ' इसे इन विषयों का अधिकार नहीं, इस का क्या आशय ? भला ईश्वर के न्यायालय में सत्य बोलना, धर्म करना, सुखी रहना, इत्यादि लाभों से किसी को जबरन् रोका जा सकता

× यह महोदय ब्रिटिश साम्राज्य के वर्त्तमान में सबसे बडे प्रधान हैं.

है ? यदि रोको तो वह अन्याय ही होगा. इस लिये यह ' शक्तः ' पद और उस की व्याख्या ' ग्रहणधारण में समर्थ, ही अधिकार परीक्षा है.ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के गुण कर्म जितनी स्पष्टता से आज कल समझे जाते हैं उतने शूद्र के नहीं.

शूद्र और शुश्रूषा का चित्र

'एकमेव तु शूद्रस्य' इस वचन से शुश्रूषा का अर्थ केवल द्विजों की शारीरिक परिचर्या ही समझ ली जाती है, इस लिए शूद्र और शुश्रूषा का व्याख्यान करना आवश्यक है. मौलिक अर्थ 'सुनने की इच्छा' इतना ही है जिसका भाव यह कि शूद्र ज्ञान की पराकष्ठा को न पहुंचा हुआ होने से द्विजों का हित-साधन करता हुआ उन से ज्ञान चर्चा सुनता रहे. मनु जी लिखते हैं कि* "जिन कर्मों से द्विजातियों की सेवा की जाती है उन बढ़ई आदि के 'शिल्पकार्य कारीगरी के काम' तथा नाना प्रकार के चित्रलेखन आदि कार्यों को करे." यदि हम शुश्रूषा का अर्थ केवल शारीरिक सेवा ही करेंगे तो अन्य आवश्यकताओं और वस्तुओं की पूर्ति करने वाले कहां से लायेंगे ! अर्थात् कुरसी, मेज़, गद्दे,

* यैः कर्मभिःप्रचलितैः शुश्रूष्यन्ते द्विजातयः, तानिकारुक कर्माणि शिल्पानि विविधानिच ॥ अ. १०-१००. इस से ऊपर के श्लोक में 'कारुक' का अर्थ सूपकार भी किया है. आज सूपशास्त्र पर अनेक भाषाओं के बृहद्ग्रन्थ इस शूद्रकर्म की महत्ता विषद रीति से प्रतिपादित कर रहे हैं. राजा नल तो इस में निष्णात ही थे. अभी ' ब्राह्मणब्रुव ' ब्रह्मबन्धुओं ने इसे अपनाया है.

चक्की, दूध, मक्खन, टोकरी, मृगचर्म, बख्तर, अस्त्र, शस्त्र, अल्मारी, मिट्टी, तांबा और पीतल आदि के पात्र, रंगे और सिले कपडे, लकड़ी, जूते, तौलिया, अंगोछे, हल, गाड़ी, आटा, शाक इत्यादि हज़ारों वस्तुओं को सिद्ध करने वालों को क्या फिर द्विजों में गिनेंगे ? और इस मान्यता से भी—कि अनापत् काल की अपेक्षा आपत्काल में उच्च कर्म करते होते हैं—यही सिद्ध होता है कि अनापत्काल में शूद्रों के शिल्प आदि से भी कोई भिन्न उच्च कर्म होंगे, परन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति की मिताक्षरा में चातुर्वर्ण्य के धर्म 'वर्णधर्म' प्रकरण में ही शिल्पादि हित कार्य शूद्रकर्त्तव्य ही की व्याख्या में माने हैं, वहां लिखा है कि × " शूद्र का कर्त्तव्य तो द्विजों की शुश्रूषा है इस से जीवन व्यतीत करे या वणिक् वृत्ति से, या विविध प्रकार के शिल्प से द्विजों का हित करता हुआ जीवन व्यतीत करे" श्लोक में जीवत् शब्द का अर्थ गूढाशय लिये हुए है, मौलिक सम्बन्ध जीविका।-रोज़गार से प्रत्यक्ष है. महाकाय कोष 'वाचस्पत्याभिधान' में

× शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तया जीवन्वणिग्भवेत्, शिल्पै र्वा विविधैर्जीवेद्द्विजातिहित माचरन् (याज्ञ०). नानाविधैर्वा शिल्पैर्द्विजातीनां हितं कुर्वन् (मिताक्षरा).

टि०:—शुश्रूषा प्रकरण में मिताक्षराकार लिखते हैं, " अन्तेवासी शिल्पशिक्षार्थी. " 'अन्तेवासी' गुरु के कुल में रह कर शिल्प सीखने वाले ब्रह्मचारी को कहते हैं, इस से भी सिद्ध है कि शुश्रूषाधर्मी शूद्र गुरुकुल में जीवन निर्वाहार्थ शिल्प सीखते थे. बिना सीखे तो उस महत्वपूर्ण शिल्प कार्य को सम्पादन कर ही नहीं सकते. श्री शंखाचार्य जी भी शिल्पमात्र और दम आदि शूद्र कर्त्तव्य मानते हैं, "जैसे शूद्रस्य द्विज शुश्रूषा सर्वशिल्पानि चाप्यथ. क्षमा सत्यं दमः शौचं सर्वेषामविशेषतः " । (वाचस्पत्याभिधान 'चातुर्वर्ण्य').

सेवक का अर्थ सीनेवाला (दर्जी) * भी किया है. सारांश पैर धोना आदि ही शूद्रकर्त्तव्य नहीं किन्तु ' विविध ' शब्द से तो बुद्धिवैभव के अनेकशः क्रिया कौशल की सिद्धि शूद्र कर्त्तव्य है × महाभारत अनु० अ० २०८-३५ वर्णधर्म में महादेव जी ने पार्वती जी को "शुभाचार वार्त्ताकथन" + विविध दस्तकारी शिल्प आदि शूद्रकर्त्तव्य बतलाए हैं. बढिया मुलायम चमकते बूट को भी नाक, भौंह चढा कर पहिनने वाले चमडे के शिल्प की प्रतिष्ठा जान सकते हैं. बांस के सूप, टोकरी आदि यज्ञीयपात्र सिरकी की चलनी, खिलौने, पर्दे, भंगी नट कंजर आदि का ही व्यापार है, जो

अन्त्यज माने गये अब शूद्र ही हैं

* षिवु धातु से कर्त्ता में प्रत्यय हो कर ' सेवक ' बनता है. सीवन-शिल्पी बम्बई लखनऊ आदि में एक२ वस्त्र की सिलाई दस दस मुद्रा तक लेते हैं. लक्षणा से सेवक के दर्जी आदि शिल्पी वाची अर्थ हैं.

× मिताक्षरा में शूद्रस्य...इस श्लोक पर देवलाचार्य का मत यह है, शूद्रधर्मो द्विजाति शुश्रूषा पापवर्जनं कलत्रादिपोषणकर्षणपशुपालनभारोद्वहनपण्यव्यवहारचित्र-कर्मनृत्यगीतवेणुवीणामुरजमृदङ्गवादनादीनि, अर्थात् द्विजाति शुश्रूषा, पापत्याग, गृहस्थाश्रम का निर्वाह, हल जोतना (एग्रीकलचर विभाग का कार्य) बोझा ले जाना, बाजारी काम (दुकानों की चीज बनाना, बेचना, बाजार की सफाई करना, मर्चेंट और एजेंट का कार्य) भवनादि के चित्र चितरना (ड्राइंग, पेंटिग आदि) नृत्य, गीत और बाँसरी, वीणा मुरज तबला आदि की विद्या (गान्धर्ववेद का ज्ञान) आदि, यह शूद्र के धर्म हैं.

+ वार्त्ता कारुक कर्माणि, शिल्पं नाट्यं तथैवच । आहिंसकः शुभाचारो दैवत द्विज वन्दकः ॥

उपर्युक्त शूद्र कर्त्तव्य में आजाते हैं. अब इन्हें जब शास्त्र ही * शूद्र बतलाते हैं तो अन्त्यजादि शब्दों का प्रयोग अनिष्ट ही है, ऋषि याज्ञवल्क्य जी कहते हैं कि + विद्या (श्रौत स्मार्त कर्म, वयोवृद्धता कुटुम्ब और रत्नादि वित्त इन पांचों से युक्त क्रमशः मान्य हैं, इन सब से युक्त शूद्र भी वार्धक (८०, ९० की आयु) में मान के योग्य है, गौतम जी ने भी ८० वर्ष × के शूद्र को श्रेष्ठत्व का पद दिया है. महाभारत में स्पष्ट वचन है कि ÷ "इन चार वर्णों की सरस्वती ब्राह्मी (वेदवाणी) है. सुश्रुत में § कुलीन, गुणवान् शूद्र को यज्ञोपवीत बिना पढावै–लिखा है. विष्णु पुराण में कहा है कि ‡ द्विजशुश्रूषा से यह ब्रह्मयज्ञ (उपासना=ध्यान) का अधिकारी हो अपने परलोकों को जीतता है. 'उत्तररामचरित्र' में 'शूद्रमुनौ कृपाणम्, पद है अर्थात् शूद्र मुनि होते थे. रामचन्द्र जी शूद्र-

---

* 'मनु० अ० १० श्लो० ४१, शूद्राणां तु सधर्माणः की टीका में कुल्लूक भट्ट मतानुसार भारतीभास्कर शिवकुमार जी का मत पृष्ठ १३ पर पुनः देखिये. जो कि काशी के 'नवजीवन' डिसेंबर १९१० के आधार पर है.

+ विद्याकर्मवयोबन्धुवित्तैर्मान्यायथाक्रमम् । एतैः प्रभूतैः शूद्रोऽपि वार्धके मानमर्हति ॥ (याज्ञ० आचाराध्याय ११६)× शूद्रोप्यशीतिको वरः (गौतम)

÷ इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती,

§ शूद्रमपिकुलगुणसम्पन्नमध्यापयेदित्येके. ‡ द्विजशुश्रूषयैवैष ब्रह्मयज्ञाधिकारवान् । निजाञ्जयति वै लोकान् शूद्रो धन्यतरः स्मृतः ॥

मुनि से कहते हैं* " तुम को अपनी उत्कृष्ट तपस्या का फल मिले सर्वदा आनन्द, हर्ष और अणिमादि सिद्धियों से भरपूर वैराज नामक लोक तुह्मारे लिए कल्याणप्रद हों स्वर्ग तुह्मारे लिए कल्याणकारी हो, तुम पवित्र लोकों में वास करो"+महाभारत में "स्वाहाकार और नमस्कार शूद्र के लिए मंत्र है. वसिष्ठजी शूद्रों को वाजसनेयी ÷विशेषण से भूषित कर कातीय सूत्रानुसार यज्ञाधिकारी बतलाते हैं.

इन संकेत रूप प्रमाणों से शूद्रों की हैसियत अतीव उच्च सिद्ध होती है. ऋषि, तपस्वी, यज्ञकर्त्ता, स्वर्गाधिकारी इत्यादि विशेषण शूद्र के प्रति हमारी भ्रमपूर्ण नीच कल्पना को समूल दूर कर देते हैं. वस्तुतः शूद्र देश के दरिद्र के नाशक, देश को श्रीमान् बनाने वाले हैं. शूद्र यदि सेवाधर्म छोड बैठें तो सारा देश शोकाकुल हो जाय, महामारी, दुर्भिक्ष घर कर बैठें. शूद्र की व्युत्पत्ति में भी यह भाव है जो प्रजाके शोक से पिघलता (दयार्द्र) होता है ' शुचा शोकेन द्रवतीति शूद्रः ' कोषकार ' शोच्य ' का अर्थ 'अनुकम्पनीय' करते हैं. भंगी और मिलों के मजदूरों की हडतालों में शोक होता है, उस

* तदनुभूयतामुग्रस्य तपसः परिपाकः, यत्रानन्दाश्च मोदाश्च यत्र पुण्याश्च सम्पदः । वैराजानाम ते लोकास्तैजसाः सन्तु ते शिवाः भद्र ! शिवास्ते पन्थानो देवयानाः, प्रलीयस्व पुण्येभ्यो लोकेभ्यः ॥ +स्वाहाकारो नमस्कारो मंत्रः शूद्रे विधीयते । ÷ शूद्रा वाजसनेयिनः ॥

टिः-महाभारत सभा० अ० ३३-४१ में युधिष्ठिर सहदेव से कहते हैं कि " माननीय वैश्य शूद्रों को (राजसूय यज्ञ में) निमंत्रण दो. "

'शोच्य अनुकम्पनीय दशा से शूद्रों का दिल पिघलता है कि 'इन लोगों का काम कैसे होगा' अस्तु. भंगी जाति को यों तो अति नीच माना जाता है पर उस की उपयोगिता उतनी हो गई है जितनी बच्चे को माता की होती है. पुराने संस्कृत साहित्य में भंगी के लिए ऐसा पर्याय नहीं मिलता जिस का अर्थ पाखाना उठाने वाला हो.

भंगी, महामारी मनूक्त शौच-विधि. नागरिक दृश्य.

भारतवर्ष के सिवा कितने ही देशों में इस भंगी के पेशा वाले ही नहीं. अर्वाचीन प्रक्षिप्त भाग में भले ही कल्पित शब्द निकल आवे. पिशाच, चाण्डाल, श्वपच के अर्थ में तो यह पेशा निकल ही नहीं सकता. सत्यहरिश्चन्द्र की परीक्षा में भी सफाई और श्मशान कर्त्तव्य ही है. पाखाना और जाजरू (जायज़रूर) फारसी शब्द हैं जिन का अर्थ 'नीचे का घर' और 'आवश्यकता का स्थान' होता है. सूरत आदि नगरों में पाख़ाने प्रायः घर के अग्रभाग पर मकान की कुर्सी से नीचे होते हैं. भारत में जंगल, शौच, दिशा, टट्टी, बाहर जाना इत्यादि शब्द बोले जाते हैं. मरहटी में पाखाने को शेतखाना और खेत को ' शेत ' कहते हैं. इन सभी शब्दों में पाखाने या संडास का अर्थ न निकलता हुआ वस्ती से बाहर का द्योतक भाव है. प्राचीनता के चिन्ह ग्रामों में अधिक मिलते हैं, वहां मनुष्य तो क्या स्त्रियां भी प्रतिसहस्र ९९९ बाहर ही जाती हैं. पहिले के नगरों के बीच २ जंगल रहता था, जिस का कुछ नमूना काशी आदि म शेष है.

सुअरों से भी इस सफाई में विशेष सहाय मिलती थी जिन्हें अब आहार बना लिया है, तब क्यों नगर सडते होंगे और क्यों प्लेग आदि में म्युनिस्पालिटियां और डाक्टर हताश रहते होंगे. सभ्यो! यह कौन सी सभ्यता है कि एक हगे और और दूसरा उठावे, जबरन् उठवाना और इनाम में हेच कहना. मनुस्मृति में तो लिखा है कि " मार्ग, भस्म, पशुशाला अन्नयुक्त खेत अग्नि और जल में मलमूत्रोत्सर्ग न करे " (अ० ४-४५, ४६, ५३) आज कल मनुष्यशाला में, कहीं २ तो पाक शाला की पिछली भीत से पुरीषशाला होगई है. नदियों में गटर जाते हैं. यह सब शास्त्रीय स्वास्थ्य के विरुद्ध ही तो हैं. पाखाने जलाने की जो चिमनियां निकली हैं वह. 'प्रातःप्रातः सौमनस्य दाता' यज्ञधूम के स्वर्ग में नरकप्रवेश ही है. ऐसे स्वास्थ्यनाशक नवीन सुधारों के करते हुए भी ऋषियों के पदार्थवेत्ता होने में उपहास का साहस ? अस्तु, पुनः श्लो० १५१, ५०, ५१ में "काष्ठ लोष्ट पत्ते तिनके आदि से भूमि को ढांक कर-उस पर-मल को त्यागे, मूत्रादि घर से ' दूर ' ही त्यागे, दिन में उत्तराभिमुख, रात्रि और संध्याओं में दक्षिणाभिमुख, छाया, अंधकार, प्राणिबाधा में यथेच्छमुख हो मल त्यागे" श्लोकों के इस अर्थ में भूमि ढांकने का प्रयोजन भूमि में मलाणुओं का प्रवेश न होना है अर्थात् सुअर, कौआ, जङ्गली मक्खी, और कीड़े ऊपर २ से ही उसे साफ कर देंगे. दूर का प्रयोजन दुर्गन्ध और उस पर बैठी हुई मक्खियों के घर में

न आने से है जो कि पाखानों, सड़कों, गलियों में फैली रहती हैं. कोषों में दूर का अर्थ ' दुःखेनेयते विप्रकृष्टे अगोचरे ' ' तकलीफ से प्राप्त होने वाला दृष्टि से अधिक दूर स्थान ' किया है जिस में बिना तकलीफ क्षणमात्र में लोटा ले प्रवेश हो सकने योग्य कोठरी का भान नहीं होता. अमुक भिन्न दिशाभिमुख आसन स्थिर बनी हुई खुड्डी पर कैसे हो ! प्राणिबाधा भी जङ्गल में ही होती है, सारांश, पाखाने नहीं तो इस के लिए किसी पेशावाले की आवश्यकता क्यों ? क्या बच्चों, रोगियों के पुरीष और गाय भैंस के प्रसव का मल उठाने को कोई पेशावाला बुलाया जाता है ? निदान हमारे देश में पाखाने नहीं थे फिर पुरीश उठाने वाले व्यवसायी कहां से ? पर्दा के प्यारे भाइयों को यह आवश्यकता पडी, ' जिस की लाठी उस की भैंस ' इस अन्यायपूर्ण दयारहित नियम से जिसे चाहा दबोच लिया, अपना पाखाना साफ कराया. ऐसे अन्यायपतित द्विज लोगों को अधिक काल तक अपने सहधर्मियों की सहानुभूति और सहायता का क्रमशः नाश होने पर उन की एक जाति ही अलग बन गई. सैंकडों पीढियों के व्यतीत होने पर यह अपने प्राचीन गौरव को सोलह आना भूल गये. परन्तु सन्तोष है कि इतिहास के अहोभाग्य से इन भंगियों में इन की पुरानी क्षत्रिय अटकें चली जाती हैं. सीमन्तोन्नयन आदि संस्कार, सूतक में मूंछ मुंडाना, चोटी रखाना आदि भी नहीं छूटा. यदि उन्हें किसी प्रकार इस जब्र को

सहते हुए भी अपने खोए हुए द्विज धर्म या शूद्र धर्म को पूरा २ पालते रहने का अवसर मिला होता तो पाखाना साफ करने की दशा में भी इतने घृणित न देखे जाते, अस्तु. शूद्र और उस के धर्म के वर्णनानन्तर अब पतित अथवा अन्त्यजादि शब्दों का रहस्य भी समझना आवश्यक है. इस समय इन दोनों शब्दों से चमार, भंगी, नट, कंजर, भील आदि और हिन्दु धर्म को छोड बैठने वालों का ही ग्रहण होता है जो किसी अंश में ठीक है. स्मृतियों में * १ धोबी, २ चमार, ३ नट, ४ वरुड (कंजर=बांसफोड), ५ धीमर (मल्लाह, नाविक, कहार, कैवर्त्त), ६ मेद (व्याध), और ७ भील, यह सात अन्त्यज माने हैं इन में से धोबी धीमर और कहीं २ भीलों के स्पर्श का प्रश्न तो रिवाज ने ही हल कर दिया. धीमर के हाथ की शष्कुली तो द्विज प्रत्यह खाते तक हैं. इस श्लोक की रचना के कारण में यह बात पुष्ट होती है कि इन विविध रोजगारों के लोग अधिक संख्या में अधोगति को प्राप्त हो गये होंगे जिस से इन्हें अन्त्यज कहा गया पापयोनि के अर्थ तिलक महोदय के शब्दों में जैसे आज कल चोरी आदि के कारण कई जातियां 'गुन्हागार' कही जाती हैं. उदाहरण के तौर पर हम यहभी कहेंगे कि आज कल की अमुक बिरा-

पतित कौन ?

* रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड एव च। कैवर्त्त मेद भिल्लाश्च सप्तेते ह्यन्त्यजा स्मृताः।
टि:-इस में भंगी नहीं आया क्योंकि भंगी श्लोकरचना से भी पीछे बने हैं.

दरी और अमुक प्रान्त के लोगों के लिए अधिक संख्या अमुक गुण, अवगुण वाली होने से उन्हें तदनुसार मानलिया जाता है, जब उपरोक्त सात समूहों के लोग क्रियाकर्म से हीन अधिक संख्या में हो गये होंगे तभी उन को अन्त्यज शब्द से पुकारा गया होगा, अन्यथा अन्त्यज, पतित, अधम उसी सामान्य नियम से धर्म से डिगने वाले ही हैं अर्थात् मनु जी के कथन से * " यह क्षत्रिय जातियां धीरे २ क्रिया कर्म के लोप और ब्राह्मणों के (सदुपदेश के) न मिलने से वृषलत्व (धर्महीनता से अधोगति) को प्राप्त होती गई " सार यह कि अन्त्यज माने हुए नई सृष्टि बन कर फिर आकाश से नहीं गिर पड़े, जो जैसा होता गया उसे वैसी २ संज्ञा मिली. आज कल बड़े २ खानदानी जो वीविंग. और कार्पेंटरी सीखते हैं इन्हें शुक्रनीति के अनुसार × समय आने पर कोली और बढ़ई कहा जाना नैसर्गिक है. रोज़गार कोई भी बुरा नहीं, कौन कह सकता है कि चमार और भंगी के पेशे में पापवृत्ति है. भंगी विना शहर में एक दिन में हाहाकार मच जाता है. हड्डी की आवश्यकता सीमान्त कर गई है. बटन, चाकू, उस्तारा, विदेशी शक्कर, शतशः वस्तुएं इस

---

* शनकैस्तु क्रियालोपादिमाः क्षत्रियजातयः। वृषलत्वंगता लोके ब्राह्मणादर्शनेनच, मनु० अ० १०-४३

टि०:—द्विज विप्र अनार्य दस्यु और शूद्र के अर्थों में प्रसंगानुसार जो किञ्चित् भिन्नता हुई है वह तत्तत्कालीन व्यवहृत गतानुगतिक सिद्धान्त से ही.

× विद्याकलाश्रयेणैव, तन्नाम्ना जातिरुच्यते। शु० ४-१३९.

की काम में लाई जाती हैं मोतियों का हार ही नहीं किन्तु इस हड्डी की भस्म खाई तक जाती है. गृह्यसूत्रादि ग्रन्थों में लाल बैल और मृगादि के चर्म को प्रायः यज्ञोपयोगी बतलाया है. इस के पकाने में भी बडी कारीगरी का काम है. यदि यह चमार डाक्टरों की तरह चीड फाड आदि स्वच्छता को स्थिर रखते हुए करें तो निस्सन्देह डाक्टरों की तह पंक्तिभोज में समय आने पर शामिल हो जावें. मनु जी 'चैलवच्चर्मणाम् शुद्धिः (५-११९)' वस्त्र समान चाम की शुद्धि मानते ही हैं. आज कल मल्लविद्या मूर्ख पहलवानों के और सङ्गीत वेश्याओं के हाथ में रहने से घृणित माना गया वैसे ही मलिन चमारों के हाथ में चमडे की कला बुरी समझी गई, अन्यथा यह कला कुछ कम कौशल *की नहीं. पहिले के चर्मकार अवश्य उच्च श्रेणि के स्वच्छता का आदर्श पालने वाले होते हुए पापरोगियों को चीडने वाले डाक्टरों की तरह सभादि में सम्मिलित रहते होंगे इन के पतितपने की छाप न लगी होगी, चारों वर्ण परस्पर भ्रातृभाव से ही वर्त्तते थे, किसी प्रकार का भी संकोचभाव नहीं था. देखिये, सिद्ध भीलिन

* टि०—हमारे एक विद्वान् मित्र अमेरिका जर्मनी आदि की चर्मकला में निष्णात जो भारतवर्ष के कई स्थानों की लेदरफेक्टरियों के मैनेजर रहे हैं, वह एकवार पूछने लगे कि संस्कृत में हमारे पेशेवाले को क्या कहते हैं, कहा गया चर्मकार-पर इस का भाव हलके आदमी का है. बोले "हमे बोर्ड पर चर्मकार लिख कर पेशा प्रकट करना है, जिसे बडी तपस्या से सीखा है, इसे 'हलका' तो हलका ही कहेगा" पाठक! धन्दे का आदर इसे कहते हैं.

के यहां श्रीरामजी का जाना स्पर्श (स्वपदों का) कराना कैसे होता* " उन दोनों बुद्धिमान् (राम लक्ष्मण) को देख कर तपस्विनी भीलिन ने उठ हाथ जोड़, पैर छू, पाद्य आचमनीय विधिपूर्वक दिया " यहां तो इस (अन्त्यजा ?) के स्पर्श की तो बात ही न रही, सारांश यह अन्त्यजत्व नवीन काल में इन के सिर मढा गया है, महाराज शान्तनु ने मल्लाह (अन्त्यज ?) की लड़की से व्याह किया पर बिरादरी+से नहीं निकाले गये, अस्तु.×वर्त्तमान के द्विज तो चातुर्वर्ण्य की गरीयसी गरिमा के पासंग पर भी नहीं चढते, शूद्र तो अपने यज्ञादि गौण कर्म त्याग बैठे. पर द्विज तो अपने मुख्य कर्मों को तिलाञ्जलि देचुके अर्थात् शूद्रों की अपेक्षा द्विजों का अधः-

चारों वर्णों का समान पतन वर्णसंकर और वस्तुतः पातक.

---

* तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः । पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ॥ पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद्यथाविधि । रामा० अर० स० ४०,

+टि०:—भारत की प्रत्येक वसति में यह प्रेमसञ्चारक अद्भुत दृष्टांत अब भी मिलेगा कि भंगीसे ब्राह्मणतक परस्पर विना ऊंचनीचभाव के काका, ताऊ, फूफी, नानी, मामा, चाची का व्यवहार भिन्न जातीय करते रहते हैं.

× व्रतशील सुबोध हैं न शर्मा, रणरोप लडें न वीर वर्मा । धनराशि न गुप्त गाढते हैं, गुरुभाव न दास काढते हैं । चतुराश्रम ढोंग ढा रहे हैं, उलटे हम हाय जा रहे हैं ॥ (' अनुरागरत्न में ' कविशिरोमणि ' शंकर ' की यह लम्बी कविता अवश्य देखिये,) कविवर मैथिलीशरण गुप्त के ' उन अग्रजन्मा ब्राह्मणों की हीनता तो देख लो, इत्यादि अनेक पद्य ' भारतभारती ' में देखने ही योग्य हैं.

पतन अधिक हुआ, अर्थात् सब का समान पतन हुआ, अतः पतितोद्धार का अर्थ चातुर्वर्ण्य का समानोद्धार ही है, शास्त्रों में पतित होने के बहुत से खड्ड बतलाये हैं, यथा मनु० में लिखा है कि " ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य क्रम से १६–२२–२४ वर्ष की आयु के उपरान्त उपनयन न कराते हुए गायत्री के अधिकार से पतित (व्रात्य) होते हैं (मनु० २–३९). विचारिये कि अब इस संस्कार की द्विजों में क्या प्रतिष्ठा है ? द्वार तक काशी और १ ही मिनिट में गुरुकुलवास (काशी जा कर आ भी जाना) और चारों वेदों की समाप्ति मान बैठे हैं. मनु के अनुसार ÷ " ब्रह्महा (वेद और वेद के पारदृश्वा ब्राह्मण का जिन्हों ने हनन किया है), २ शराबी, ३ चोर, (पराये धन को विविध उपायों से अपनाने वाले) और गुरु आदि मान्यों की (पर) पत्नी से गमन करने वाले, यह सब, इन में से एक काम को करने वाले महापातकी हैं," "अहिंसा, सत्य चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य, लोभत्याग इन पांच पर जो आरूढ नहीं वह पतित होता है " (देखिये पृ० १५१). पाराशर स्मृति में कहा है कि × ब्रह्महत्या से दुगना पाप गर्भपात में है उस का प्रायश्चित्त भी नहीं है.

÷ ब्रह्महाच सुरापश्च स्तेयीच गुरुतल्पगः । एते सर्वे पृथग् ज्ञेया महापातकिनो नराः । मनु० अ० ९–२३५ " नानृतात्पातकम् परं "

× यत्पापं ब्रह्महत्यायाः द्विगुणं गर्भपातने । प्रायश्चित्तं न तस्यास्ति तस्यास्त्यागो विधीयते, अ० ४–१८

क्या आज गुप्तरीति से यह असंख्यात पाप द्विजों में नहीं हो रहे ? व्यभिचारियों को वेद में **शिश्नदेव** कह कर सभा में आने अर्थात् स्पर्श करने का भी निषेध किया है. मांसाहार के कारणभूत आठ घातक माने हैं (पर वहां पशु की खाल उतारने वाले को घातक नहीं माना.) पुरुषमैथुन, कन्यागमन इत्यादि प्रकार के पातकों की संख्या चारों वर्णों में थोडी नहीं. वर्णसंकरों के लक्षणों में मनु जी कहते हैं कि * "वर्णों के व्यभिचार और अपने कर्त्तव्य के त्याग से वर्णसङ्कर होते हैं" इन पातकी आदि लक्षणों की विद्यमानता में इन दीनों को पतित बताना तो अन्याय ही है जो बिचारे भूखेपेट हिन्दूधर्म की गोद से निकल रहे हैं. अछूत माने हुओं की अपेक्षा उच्च माने गए लोग शुभसंग के प्रताप से कुछ स्वच्छता और विवेक को पकडे रहे अतएव वह कुछ सभ्य बने रहे. इस प्रकार सभ्यपतित और असभ्यपतित यह दो भेद किए जासकते हैं, पर दोनों के पातकीपने में कुछ भी अन्तर नहीं. उज्वल वस्त्र पहिनना और भाषाज्ञानप्राप्तिमात्र का ही अन्तर समझिये, सो तो 'बहुत से नीच ' लोग भी इस धन से फेशन के सभ्यताभास को प्राप्त कर चुके हैं, पर ' पतितोद्धार ' की व्याख्या केवल शुभ्र वस्त्र धारण करा देना ही तो नहीं

* व्यभिचारेण वर्णानामवेद्यावेदनेन च । स्वकर्मणाञ्चत्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः ॥ मनु० अ० १०-२४.

चातुर्वर्ण्य के समानोत्थान की आवश्यकता, विधि और महात्मा तिलक की व्यवस्था.

किन्तु चातुर्वर्ण्य की व्यवस्थित स्थिति को ही पतितोद्धार कहा जा सकता है जैसा कि महानुभाव तिलक लिखते हैं:-

" पुराने ज़माने में ऋषियों ने श्रम-विभागरूप चातुर्वर्ण संस्था इसलिए चलाई थी कि समाज के सब व्यवहार सरलता से होते जावें, किसी एक विशिष्ट व्यक्ति या वर्ग पर ही सारा बोझ न पड़ने पावे और समाज का सभी दिशाओं से संरक्षण और पोषण भलीभांति होता रहे यह बात भिन्न है कि कुछ समय के बाद चारों वर्णों के लोग केवल जातिमात्रोपजीवी हो गये, अर्थात् सच्चे स्वकर्म को भूल कर वे केवल नामधारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र हो गये. इसमें सन्देह नहीं कि आरम्भ में यह व्यवस्था समाजधारणार्थ ही की गई थी; और यदि चारों वर्णों में से कोई भी **एक वर्ण अपना धर्म अर्थात् कर्तव्य छोड दे, अथवा यदि कोई समूल नष्ट हो जाय, और उसकी स्थानपूर्ति दूसरे लोगों से न की जाय तो कुल समाज उतना ही पंगु हो कर धीरे २ नष्ट भी होने लग जाता है** अथवा वह निकृष्ट अवस्था में तो अवश्य ही पहुंच जाता है. " (मरहटी गीतारहस्य पृष्ठ ६६). पाठक ! इस गम्भीरोक्ति को पुनः विचारिये. अस्तु, मनुष्य जाति तो स्वभावतः सहायता की इच्छुक है, बाल्यकाल की दीन असमर्थ दशा राजा से रंक तक सभी को उपस्थित होती है. युवाकाल और

पतितोद्धार क्यों करें ! पतित-पावनता का प्राकृतिकदृश्य.

चक्रवर्त्तिराजत्व काल भी सहाय के प्रार्थी रहते हैं, जिस से पतित-पावनता एक स्वाभाविक कार्य प्रतीत होता है. आप जब (ईश्वर न करे) कहीं निर्जन स्थली में जाते जाते ठोकर खाकर गिर पड़ें, चलने में नितान्त असमर्थ हो जावें, ऐसी दीनहीन दयनीय दशा में एक घूंट पानी पिला सहारे से उठा ले चलने वाले के प्रति आप के मुख से स्वभावतः आशीर्वाद निकल पडेगा. इसी भाव को मनुस्मृति में क्या ही अच्छे दृष्टान्त से झलकाया है * "जिस पकार पृथ्वी ऊंच-नीच, जड, चेतन, उत्तम, अधम, को समान कर के धारण कर रही है, उसी प्रकार सब प्राणियों का पोषण पार्थिव व्रत कहाता है" ÷"निर्गुण प्राणियों पर भी साधु दया करते हैं, जैसे चन्द्र चाण्डाल के के घर पर से अपनी शीतल चांदनी नहीं हटा लेता" यह नीति वचन तो छोटे बच्चे भी पढते रहते हैं. इन नैसर्गिक प्रमाणों से बढ़ कर और कौन सा प्रमाण हमें पतितपावनता के लिये चाहिये. इस कार्य में हमें एक दिन की छुट्टी न लेना चाहिये. देश में कोई पतित न रहे यही हमारा लक्ष्य अहर्निश होना चाहिये. इसी लिए ऋषिवर्योंने नित्य के पांच यज्ञों में 'पतितोद्धार' लगाया था, भोजन से पहिले यह कर्त्तव्य पाल लिया जाता था, पतित रोगी आदि का भोजन प्रत्येक गृहस्था

पतित पावनता नित्य कर्म है.

---

* यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते समं । तथा सर्वाणि भूतानि विभ्रतः पार्थिवं व्रतं ॥ ९-३११.

÷ निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
न हि संहरते ज्योत्स्नां चंद्रश्चाण्डाल वेश्मनि ॥

श्रमी को प्रथम ही अलग निकाल लेना मनुजीने* प्रतिपादित किया है. भारत के हिन्दु घरों में यदि यह भूतयज्ञ नित्य होता रहता तो आज पतितोद्धार का कार्य वासी इकट्ठा न होता रहता. इसी लिये मनु ने इन नित्य के यज्ञों में छुट्टी भी तो नहीं मानी है " नैत्यके नास्त्यनध्यायो " (२–१०६). पाठक ! समझ सकते हैं कि यह कितना महत्वपूर्ण आवश्यक नित्यकार्य है.

पतितों के लिए ऋषियों का खुला द्वार.

महर्षि शाण्डिल्य जी लिखते हैं "आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत् (भक्तिमीमांसा, २–१३) इस पर भाष्यकार स्वप्नेश्वराचार्य जी कहते हैं ÷ कि " संसारदुःख छोड़ने की इच्छा सब को समान होती है इस से निन्दित चाण्डालयोनिपर्यन्त जनों को ईश्वरभक्ति करने का अधिकार है. यहां सन्देह होता है कि—वेद पढ़ने का अधिकार विवेक के साथ होने से वर्णधर्मरहित वेद के अनधिकारियों को ईश्वरभक्ति करने का अधिकार कैसे हो सकता है ? इस सन्देह की निवृत्ति के लिये शाण्डिल्याचार्य (पारम्पर्यात्) यह पद सूत्र में देते हैं अर्थात् परम्परा से उपदेश द्वारा

---

* शुनांच पतितानांच श्वपचां पापरोगिणाम्, वायसानां कृमीणाञ्च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥ म० ३–९२

÷ निन्दितचाण्डालयोनिपर्यन्तं भक्तावधिक्रियते संसारदुःखजिहासया अविशेषात् । अथ वेदाध्ययनानधिकारात् कथं वर्णधर्मरहितानाम् स इति चेत्तत्राह, पारम्पर्यादिति ।

हो सकता है" स्कंद पुराण में लिखा है कि " ×दुष्टाचारी सर्वभक्षी कृतघ्न, नास्तिक और शठ भी श्रद्धा से परमात्मा के आश्रय लेने पर निर्दोष होते हैं " ' अपवित्र ' इत्यादि श्लोक सन्ध्यासमय जो बोला जाता है + उस में " चाहे जिस 'अपवित्र' दशा को पहुंचे हुए के लिए परमात्मा के भजन के अनन्तर अन्दर बाहर से शुद्ध माना है" छान्दोग्योपनिषद् में ऋषि जावाल का अद्भुत वर्णन देखिये, " *सत्यकाम जावाल गौतम हारिद्रुमत ऋषि के निकट जा कर बोला कि आप के निकट में स्वाध्यायार्थ ब्रह्मचर्य धारण करूंगा, इसी लिये आप की सेवा में आया हूं. (महर्षि हारिद्रुमत ने) उस से पूंछा कि हे प्रिय तात ! तेरा गोत्र क्या है ? पश्चात् वह सत्यकाम बोला हे भग-

× दुराचारोपि सर्वाशी कृतघ्नो नास्तिकः शठः, समाश्रयेदादिदेवं श्रद्धया शरणं हि यः ॥ निर्दोषं विद्धि तं जन्तुं प्रभावात् परमात्मनः ॥१८, १९॥

+ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थांगतोऽपिवा । यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं सः बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ।

* सहहारिद्रुमतं गौतमभेत्योवाच, ब्रह्मचर्यं भगवति वत्साम्युपेयां भगवन्तमिति तं होवाच किंगोत्रोनु सोम्यासीति, स हो वाच-नाहमेतद्वेद भो ! यद्गोत्रोऽहमस्म्य पृच्छं मातरं । १ । सामां प्रत्यब्रवीत बह्वंचरन्ती परिचारिणी यौवने त्वा मलभे साहमेतन्नवेद यद्गोत्रस्त्वमसि । जबालातुनामाऽहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि ॥ सोऽहम् सत्यकामो जाबालोऽस्मि भो इति ॥ २ ॥ तँ हो वाच-नैतद् ब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधँ सोम्याऽऽहरोप त्वानेष्ये न सत्यादगा इति । छा० ४-४-४.

वन् ! मैं यह नहीं जानता कि किस गोत्र का हूं. मैं ने अपनी माता से पूछा था उस ने कहा कि ' बहुत सेवा करती हुई मैं (सेवकी) ने तुझे यौवन में प्राप्त किया सो मैं नहीं जानती कि किस गोत्र का तू है. जबाला नाम वाली मैं हूं और सत्यकाम नामक तू है. हे भगवान ! सो मैं सत्यकाम जाबाल हूं. उस से वे ऋषि बोले कि अब्राह्मण इस बात को (ऐसी स्पष्टता से) नहीं कह सकता, हे सोम्य ! तू सत्य से पृथक् नहीं हुआ है अतः तू ब्राह्मण है इस लिए सोम्य ! उपनयन की सामग्री ला तेरा उपनयन करूंगा. इस प्रकार ऋषि ने उसे दीक्षा दी और वह जाबाल पुनः ऋषि पदवी से भूषित हो भारत का समुज्वल यश फैलाता रहा. पाठक ! यह सब दिग्दर्शन मात्र है. और चलिये:—भगवद्गीता में श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि " * हे अर्जुन ! मेरे आश्रय स्त्री, वैश्य, और शूद्र किंवा अन्त्यजादि पाप-योनि तक **परमसिद्धि** पाते हैं " तिलक महोदय इस श्लोकार्थ के

महात्मा तिलक के ख्याति-लब्ध ' गीतारहस्य ' में पतित-पावनता का गवेषण.

अनन्तर व्याख्यारूप से और भी लिखते हैं:—" जिस की बुद्धि सम हुई वह श्रेष्ठ फिर धंदे से वह बढ़ई हो, बनिया हो वा खटिक हो; किसी भी मनुष्य की योग्यता धन्दे अथवा जाति पर

* मांहि पार्थ व्यपाश्रित्य ये पिस्युः पापयोनयः । स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रा स्तेपि यान्ति परांगतिम् ॥ अ० ९–३२.

न रहते हुए सर्वांश में उसके अन्तःकरण की शुद्धि पर अवलम्बित है, ऐसा भगवान् का कथन है सो स्पष्ट होता है. आज में सर्व लोगों के लिए इस प्रकार मोक्षद्वार खुला होने से समाज में जो एक प्रकार की विलक्षण जागृति उत्पन्न होती है उस का स्वरूप महाराष्ट्र के ' भागवत धर्म ' के इतिहास से सहज समझ में आता है. परमेश्वर को स्त्री क्या, चांडाल क्या, और ब्राह्मण क्या, समान ही. " देव (ईश्वर) भाव का भूखा है.* " प्रतीक का नहीं, काले गोरे वर्ण का नहीं और स्त्री पुरुषादि किंवा ब्राह्मण चांडालादि भेदों का भी नहीं, " इस के बाद तुकाराम का एक मराठी अभंग उद्धृत कर के–जिस में चाण्डाल वेश्यादि तक को भगवद्भक्ति का अधिकार बताया है–लिखते हैं:–" वेश्या यह शब्द उपर्युक्त अभंग में देख कर जीमने के समय रूढि अनुसार रेशमी धोती धारण करने का आडम्बर करनेवाले कितने ही विद्वानों को बुरा लगेगा पर कहना चाहिये कि ऐसे लोगों की समझ में खरा धर्मतत्व नहीं आता. बुद्ध ने आम्रपाली नामक वेश्या और अगुलीमाल नामक चोर को दीक्षाएं दीं " § पाठक ! महात्माजी के इन वचनों से अन्त्यजोद्धार के लिए कुछ वक्तव्य शेष नहीं रहता. ' सर्वे पदा हस्तिपदे निमग्नाः ' के अनुसार अन्त्यजों के पढने लिखने आदि सामर्थ्य की स्वतन्त्रता न छीनना,

* " देव भावाचा भुकेला " यह एक प्रसिद्ध मराठी जनोक्ति है. § मराठी गीता रहस्य से अनुवादित.

उन में अस्पृश्यत्व को पैतृक (मौरूसी) न समझना आदि सब कुछ इतने में आ ही जाता है.

पतितपावनता का इतिहास

बम्बई के यशोराशि डाक्टर भाण्डारकर ने ' नासिक ' आदि के कई शिलालेखों के दृढ़ाधार पर पूने (अगस्त १९०९) के अपने व्याख्यान में " शक, हूण आदि विदेशस्थ जातियां हिन्दुओं में दूध में पानी की तरह मिल गईं " × इस भाव की बहुमूल्य बात कही थी. भविष्य-पुराण तो इस प्रकार के इतिहास का मानो मसाला ही है. लिखा है कि * " कण्व ऋषि मिश्र देश में जाकर उपदेश से दस हज़ार म्लेच्छों को शुद्ध कर ब्रह्मावर्त (युक्त प्रान्तान्तर्गत भागविशेष) में लाए, उन सपत्नीक म्लेच्छो में से कुछ को शूद्र वर्ण का तथा दो हज़ार को वैश्य वर्ण का अधिकार दिया. " यवन राजत्व § में स्वयं-अकबर बादशाह ने राजाटोडरमल और पं. बीरबल से शिखासूत्र की दीक्षा ली. बाबा नानक ने ' मर्दाना ' आदि मुसलमानों को

× पृ. ७५ पर देखिये मान० ला० लाजपतराय जी की पुष्टि तथा पृ० १७३ पर वर्णों के उद्धारार्थ महात्मा तिलक के विधिवाक्य.

* सरस्वत्याज्ञया काण्वः, मिश्रदेश मुपाययौ । म्लेच्छान् संस्कृत्य चाभाष्य तदा दशसहस्रकान् ॥ वशी कृत्यस्वयं प्राप्तो ब्रह्मावर्ते महोत्तमे ॥ सपत्नीकांश्चतान् म्लेच्छान् शूद्र वर्णाय चाकरोत् ॥ द्विसहस्रस्तदातेषां मध्ये वैश्या बभूविरे ॥ भ० पु० प्र० ४–२१. § देखिये नवलकिशोर प्रेस लखनऊ की ' दबिस्ताने मज़ाहिब,

हिन्दु बनाया. गुरु गोविंदसिंहजी ने जबरन् मुसल्मान बने हुओं को पुनः सिंह बनाया. महाराजा रणजीत सिंह जी ने कई मुसलमान लड़कियों को हिन्दूधर्म की शरण दी. गुजरात का माननीय प्रसिद्ध नागर ब्राह्मण भक्त नरसिंह मेहता चमारों के घर हरिभक्ति किया करता, प्रसाद बांटता था, गुजरात की सरकारी पाठशालाओं की सातमी पुस्तक में भी इस का विशेष वर्णन है. 'भक्तमाल' ग्रन्थ अधिकतर खटिक, कसाई, मोची, व्याध आदि जातियों के भगवद्भक्तिलीन महापुरुषों की स्वर्गप्राप्ति की कथाओं से परिपूर्ण है, साधु आदर्श तुकाराम, रामदास आदि के मराठी के ' अभंग ' इन्हीं भावों से पूर्ण हैं. ' दो सौ बानवे वैष्णवों की वार्त्ता ' नामक पुस्तक इसी चर्चा से भरी है.

अस्पृश्यता निवारिणी अखिलभारतीय सभा बम्बई.

अभी १९१८ ई. के २३ और २४ मार्च के दिन बम्बई में बडोदा सर्कार श्रीमन्त सयाजीराव महाराज के अधिपतित्वाश्रित भारत भर को जो अछूत निवारिणी सभा अपूर्व समारोह के रूप में हुई थी उस में प्रशंसित नरेश का जो गवेषणयुक्त भाषण हुआ वह बहुत ही विज्ञता पूर्ण होने से मननीय था, दूसरे वक्ताओं के भाषण भी इस मत को अपूर्वभूत पुष्टि देने वाले थे उन में से कुछ महापुरुषों के वचन अधोलिखित हैं:—

सनातनपुरुष महात्मा **बालगंगाधर तिलक** ने अपने उद्गार यों

कहे. " अछूतपने की रूढि पूर्वकाल में नहीं थी, इस में शास्त्रीय आधार नहीं. किसी को किसी का अस्पृश्य मानना शास्त्रविघातक है. मैं स्पर्शास्पर्श नहीं मानता, एकबार मुझे चोखामेला * की जाति के लोग मिलने आये, उन्हें मैं ने अपनी बैठक दी थी, १८९४वें साल में सार्वजनिक गणपति विसर्जन की सवारी निकली थी तब शुक्रवार पेठ ‡ के चमारों के गणपति को मैं ने अपने गणपति की गाडी में बिठाया था जो प्रसिद्ध है, परन्तु किसी की ओर से मुझे कोई बाधा नहीं हुई. ' रूढि द्वारा प्राप्त इस बहिष्कार की रीति को त्यागना चाहिये ' यह मेरा मत पहिले ही से है और राष्ट्र कार्यों में तो हमें कंधे से कंधा लड़ा कर काम करने की आवश्यकता है. उन कार्यों में तो उच्च नीच कल्पना ही उचित नहीं. पेशवाई काल में लड़ाई के प्रसंगों पर यह नीच मान लिए गये लोग ही पानी भरते थे जिसे ब्राह्मण क्षत्रिय सभी पीते थे. सारांश भेदाभेद न मान कर—सभी के एक बन्धुत्व के नाते—एकत्र हुए विना राष्ट्र कार्य कभी नहीं होता. "

माननीय खापर्डे ने अनेक अनुभूत उदाहरणों के साथ कहा कि " पूर्वकाल में चार वर्ण हुए तब ब्राह्मणादि को स्व तथा उत्तरोत्तर वर्ण की कन्या से विवाह करने की शास्त्रीय आज्ञा थी. अन्नव्यवहार में तो दोष था ही नहीं. नंद के घर ऋषि, ब्राह्मणों के भोजन करने के उदाहरण मौजूद हैं. सूरत की राष्ट्रीय परिषद् के समय हम लगभग

* प्रसिद्ध भक्त चमार ‡ पूना नगर का एक मुहल्ला

८०० भिन्न जातीय लोग एक ही पंक्ति में भेदभाव विना जीमते थे, पेशवाई काल में सेनापति की पदवी पर चमार जाति का पुरुष था जिसे महाराज की दहिनी ओर का मान प्राप्त था." (मराठी सयाजी विजय ७--४--१८).

करवीर पीठारूढ श्री शङ्कराचार्य महाराज ने उपस्थित न हो सकने के कारण इस परिषद् के प्रति अपने औदार्यपूर्ण विचार इस प्रकार लिख भेजे थे "पारलौकिक वृति वाले लोगों के लिए तो अस्पृश्यता ठहर ही नहीं सकती परन्तु अन्य जो बडा भाग गृहस्थों का है उसे भी समय की परिस्थिति लक्ष्य में लेनी ही चाहिये, केवल धर्माचरण (पूजा पाठ) में नहीं लगे रहने वाले जो लौकिक गृहस्थ, मुसलमान ईसाइयों को अस्पृश्य नहीं मानते वह अपने में ही के कुछ हिन्दुओं को अस्पृश्य मानें यह पाप है. अस्पृश्य माने हुए वर्ग में से कितने ही सन्त हुए हैं जिन्हें ब्राह्मणों ने भी वन्दनीय माना है." (गु. स. वि. ११--४--१८)

संस्कृति का पुनरागमन.

इस नवीन युग में भूतपूर्व स्वर्गस्थ काश्मीर नरेश महाराज रणवीरसिंह ने पतित हुए तीन राजपूतों को शुद्ध किया. जिस निमित्त जम्बू और काशी के पंडितों की व्यवस्थानुसार वहां प्रख्यात ग्रन्थ ' रणवीर-प्रकाश ' की रचना हुई. और पतितपावनता का पुनर्युग स्थापित हुआ. स्मरणीय राजा राममोहनराय और महात्मा देवेन्द्रनाथ टागोर

ने भी इस कर्तव्य के प्रति पूर्ण सहानुभूति प्रदर्शित की. परन्तु ऐसे कार्यों की सिद्धि के लिए गम्भीर विस्तृत नदी के वेग को उलटा बहाने की जैसी गहनता से उपमा दी जा सकती है, जिसे इस नवयुग में महर्षि दयानंद ने अपनी प्रतिभा का एकमात्र स्तम्भरूप अपेक्षित आधार दे बहरे कानों तक पतितपावनता की गम्भीर गूंज पहुंचाई,

महर्षि दयानंद.

सहारनपुर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति को स्वयं पवित्र किया. अब जिन का शुभनाम अलखधारी है. तदनन्तर उन की स्थापित संस्था–आर्य समाज–ने समूह के समूह शुद्ध कर–इस कार्य को उत्तरोत्तर उत्तम रूप दिया. धर्मवीर पंडित लेखराम जी की जीवनी इसी कार्य की आहुति बनी. पं. भोजदत्तजी ने बीस सहस्र विधर्मियों को हिन्दु धर्म के अन्तर्गत किया. महर्षि दयानन्द की वसीयत की एक धारा के अनुसार भारत के विभागों में आर्यसमाज ने अनेक पतितपावनाश्रम (विधवाऽनाथरक्षणालय) खोल कर पतितपावनता का सर्वोत्कृष्ट श्रेय ले लिया. दिन धौले आदमियों के डाके पड़ने बहुत कुछ रुके. सनातनधर्मसभा और शुद्धिसभाओं ने भी हाथ बटाया. ' सर्वेंटं ऑफ इंडिया सोसाइटी ' ने भी बम्बई आदि नगरों में नीच जातियों के लिए शिक्षालय खोले. साधु चरित महात्मा विठ्ठलराम जी शिंदे बी.

दक्षिण भारत.

ए. ने इस यज्ञ में अपने शरीर को ही अर्पण किया हुआ है. बंबई और ' मंगलोर ' के 'डिप्रेस्डक्लास मिशन, ने भी बहुत से शिक्षणालय खोल कर अपनी प्रवृत्ति जागृत की है. पर श्रीमन्त बडोदा नरेश ने जो आशातीत पतितोद्धार कार्य की सिद्धि कर दिखाई है वह अन्य सरकारों को भी अनुकरणीय है. बडोदा राज्य में अछूत माने हुओं के लिए २५० की जंगी संख्या में पृथक् पाठशालाएं हैं जिन के विद्यार्थियों की

श्रीमन्त महाराज बडोदा.

संख्या अनिवार्य शिक्षण के प्रभाव से सत्रह हज़ार है. कुछ पाठशालाएं तो सन् १८८२ ई० में ही खोल दी थीं जिस को आज ३६ वर्ष का सुदीर्घकाल होता है. इस समय उन में पढ़े हुए डेप्युटी एज्यु० इंस्पेक्टर जैसी जगहों पर कार्य कर रहे हैं. दो उत्तम आदर्श छात्रालय भी खुले हुए हैं. अंग्रेज़ी, संस्कृतशिक्षा का भी पर्याप्त, असामान्य प्रबन्ध हो चुका है. एक अछूत जाति के पुरुष को श्री०महाराज ने अपनी लेजिस्लेटिव कौंसिल (धारासभा) का सभासद् बनाने तक की महती उदारता कर बताई, राजभवन में अछूत विद्यार्थियों को भोज देने तक का दीनवात्सल्य झलका दिया. उत्तरोत्तर यह कार्य वृद्धिंगत होते हुए नवीन बडोदा में इतने पर ही पतितोद्धार की ' इतिश्री ' नहीं है. श्रीमन्त महाराज की पतित-पावनता की असीम पवित्र लगन का पूर्ण अनुमान हमें तब हुआ जब वे एकबार अछूतों के सड़े झोंपडे देखने को–हमारे बडोदे के

निवास काल में--हमें अपनी सेवा में साथ ले गये, और वहां जा कर मर्मज्ञता से उन के रहन सहन देखने में अपना बहुमूल्य समय बिताने का कष्ट उठाया. प्रसिद्ध वक्ता श्रीयुत पंडित आत्मारामजी अमृतसरी ने यहां के इस कार्य में पूर्णश्रम से अपनी शुद्ध लगन प्रमाणित कर बताई है. उच्चाकांक्षी प्रशंसित महाराज की शासन मुक्तावलि में यह दीनोद्धाररूप हीरे की झलक इतिहास में विद्युन्माला का काम करेगी. सत्यमानी माननीय मोहनदास कर्मचंद गान्धी जी का तो सिद्धान्त ही यह है कि " अछूत जातियों की उन्नति करना अपना कलङ्क मिटाना है. " इसभाव गर्भित उक्ति को चरितार्थ करते हुए श्रीमान् ने अपने विख्यात ' सत्याग्रहाश्रम ' (अहमदाबाद) में एक पठित अन्त्यज कुटुम्ब को प्रविष्ट किया था. भारतवर्ष में कचित् ही उन का ऐसा व्याख्यान होता होगा जिस में पतितोद्धार की ओर तीव्र लक्ष्य न दिलाया जाता हो. आफ्रिका, गुजरात और चंपारण्य में वह बहुत कुछ दीनोद्धार कर सके हैं, तद्वत् भारत के भिन्न नगरों में अनेकवार चमार आदि के मुहल्लों में जा २ कर उन की दशा का यथार्थ चित्र देख उन के आगत स्वागत का–" भीलिन के बेर सुदामा के तण्डुल–की तरह रुचिरुचि, भोग लगाते " हैं. ' सत्य+आग्रह ' के सिद्धान्तानुसार ही इस ओर उन का सीमान्त लक्ष्य गया है. जिस से जनता में

तपोनिष्ठ महात्मा गान्धी जी का आश्रम.

यह कार्य आदरणीय हो अपेक्षित आचरण के आशांकुरदर्शन से जागृतिरूप सुजीवन का संचार कर, अंशतः भारतोत्थान के पूर्वरूप का व्यापक मङ्गल गाता हुआ आमोदसमीर बहा रहा है.

[प्रमाण और इतिहास समाप्त.]

कर्त्तव्य.

[उद्धार का स्वरूप]

शूद्रो ! उठो तुम भी कि भारत भूमि डूबी जा रही,
है योगियों को भी अगम जो व्रत तुम्हारा है वही।
जो मातृसेवक हो वही सुत श्रेष्ठ जाता है गिना,
कोई बड़ा बनता नहीं लघु और नम्र हुए विना ॥
रक्खो न व्यर्थ घृणा कभी निजवर्ण से या नाम से,
मत नीच समझो आप को ऊँचे बनो कुछ काम से।
उत्पन्न हो तुम प्रभुपदों से जो सभी के ध्येय है,
तुम हो सहोदर सुरसरी के चरित जिस के गेय हैं ॥

[कविवर मैथिलीशरण गुप्त.]

उद्धरेदात्मनाऽत्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवह्यात्मनो बन्धु रात्मैवरिपु रात्मनः ॥ ४–५
न हिनस्त्यात्मनात्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ १३–२८

" अपने आप अपना उद्धार करे. अपने को नीचे न गिरावे, आप ही अपना बन्धु और आप ही अपना शत्रु है. जब अपना हनन स्वयं नहीं करता तब वह परम सिद्धि पाता है " गीता की इस सूक्तिसुधा में स्वाश्रय, स्वतः उद्धार का गूढ रहस्य कूट कूट कर भरा हुआ है. जब भारत के स्वयंदासतपस्वी चारों वर्ण उन्नति के मूलमंत्र स्वाश्रय का प्रयोग जानते थे तब पतितपने के अस्तित्व को देश का कलङ्क समझा जाता था. जिसका एक सुन्दर दृष्टान्त रामराज्य * है. जब उन्हें भान था कि प्रत्येक मानवदेह में सरजनहार ने अद्भुत शक्तियों के अङ्कुर प्रादुर्भूत किए हुए हैं तब ईश्वरदत्त आदरणीय अपनी उस बहुमूल्य जीवनसम्पत्ति की विज्ञता से उन अङ्कुरों का पोषण करते हुए संसार को चकाचौंध में डालनेवाले करतब सहसा कर बताते थे. अमेरिका के शुभ सङ्कल्पशील आदर्शशूद्र बुकर टी. वाशिंग्टन × ने स्वजीवन की आदिमध्यावसानीय सुघटित घटनाओं से सभ्यजगत् एवं पतितावस्थापन्न जनों को सिखा दिया कि 'यथातथा बुभुक्षा निवृत्ति कर जी रहनेवाला, पर स्वशक्तियों के भावी रूप का ज्ञाता अधमकुलजात एक बालक निसर्गजात स्वशक्तियों की भूख को आहार देता हुआ किस प्रकार अपना उद्धर्त्ता—अपना ही नहीं '--अपनी मरणा-

* देखिये रामा० बा० स० १ " प्रहृष्टमुदितोलोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः। निरामयोह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः ॥ कामी वा न कदर्यो वा न विद्वान् नच नास्तिकः। नानाहिताग्निर्नायज्वा न क्षुद्रो वा न तस्करः "

× बुकर टी० महाशय का स्वर्गवास १९१५ ई. में हुआ है. यह निग्रो—हबशी

सत्व जाति का प्राणदाता बन जाता है' 'वह अपने पैरों खड़ा है' इस कहावत में भी वही स्वाश्रय का भाव पूरित है. रूपकोक्ति से भारत के पैर शूद्र हैं, यह ध्यान रहे कि भारत पैरों की लूली दशा में खड़ा होने से विवश रह कर परिहास का प्रबल प्रसंग प्रस्तुत न कर बैठे. परोपकार समाज का सिद्धान्त ही नैसर्गिक है. ब्राह्मण=आँख सङ्कोच-भाव भजती हुई पैर=शूद्र को स्वार्थबुद्धि से चलने का देखनारूप सहाय न देती हुई किसी भित्ति की कील से अपनी ही पूर्णाहुति कर बैठेगी. स्वार्थ=संकोच=मृत्यु है, परार्थ=विकास=जीवन. यही पारस्परिक सहानुभूति का सर्वतंत्र सिद्धान्त उद्धार का जीवन रसायन पथ्य है. निचोड में कहें तो पहले इन नीच माने हुओं के कान में यह मंत्र फूंकने की आवश्यकता है कि **वे अपनी शक्तियों की विकास रूप बुभुक्षा को न मारें,** मनुष्यत्व की अज्ञातमर्याद

जाति के थे. जहां र मा बिकी वहां र यह भी भट्टी झोंकने आदि पर रहे. पढ़ने का शौक लगा, तब अलाव पर, सडकों की लालटेनों पर, मज़दूरी से अवकाश-प्राप्ति की दशा में ही अनेक आपत्तियों को सहते हुए पढ गये. क्रमशः अध्यापक पुनः अध्यापकों के अधिष्ठाता बने. पशुवत् बाज़ार में बेचना कोडों से मारना आदि अत्याचार इन की जाति के साथ साधारण रिवाज की बात थी. 'अंकलटाम्स-केबिन' अंग्रेजी की पुस्तक इन्हीं वर्णनों से भरी है. बुकर महाशय ने अपने और स्वजातीय विद्यार्थियों के हाथों की ईंटों से विद्यामन्दिर बनाए, जो अब 'टस्केजी विश्वविद्यालय' के नाम से स्वतः उद्धार और स्वाश्रय का विजयध्वज अपने वैजयन्त से फहरा रहे हैं.

सुगुप्त शक्ति की पूंजी का भान होते ही उन के कान हो जायेंगे. × " सब कुछ पराधीन होना दुःख, सब स्वाधीन होना सुख " इस स्वतंत्र साम्राज्य के रहस्य का स्वाद चाखते ही स्वतः उद्धार की विधि पूंछने को किसी के सामने उन्हें गिड़गिड़ाना न पडेगा. ' आचारो-हन्त्यलक्षणम् ' यह मनूक्त सदाचार मर्यादा ही कल्याण करेगी. म्लेच्छ माने हुए विदेशी ब्रह्मचर्यादि तपस्या से राष्ट्र निर्माता सिद्ध हो गये. उपर्युक्त पांच यमों पर आरूढ न होना पतित दशा है और आरूढ रहना उन्नत दशा. चातुर्वर्ण्य के प्रधान २ कर्त्तव्यों के अतिरिक्त यह पाचों साझे के कर्तव्य हैं, साझे के भाग में बेईमानी न होनी चाहिये. पतित माने हुए अशुद्ध हैं तो उन के गात्रों की शुद्धि * जल से, मन की सत्यसे, आत्मा की विद्या और तप से, बुद्धि की ज्ञानोपदेश से कर देनी चाहिये. गात्रशुद्धि के सिद्धान्तसे अछूतभावना स्वयं उड़ जाती है. जैसी कि यवन, फिरंगी, रोगी की चीड फाड और 'अनीमा' से दस्त करने कराने वाले डाक्टर, जर्राह, मोची-और तो और-कसाई और वेश्याओं तक से उड़ गई. हिन्दू (आर्य) धर्मच्युतों के ढंढोरा रूप प्रायश्चित्त भी किए जावें. उद्धार का पूर्वरूप खटिक, सिकलीगढ आदि

× "सर्वं परवशं दुःखं सर्व मात्मवशं सुखम् ॥ (मनु. ४–१६०). पराधीन स्वप्नेहुं सुख नाहीं (गोस्वामी तुलसीदास)

* अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति, विद्यातपोभ्याम् भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति (मनु० ४–१५).

सभी हिन्दूधर्माश्रयी जातियों को अक्षराभ्यास कराना, मन्दिर, कथा, तीर्थ, उत्सव, मेला, कूप, तडाग आदि सार्वजनिक वस्तुओं का समानता से उपयोग लेने देना है अर्थात् "प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते" और "नीच बडन के संग ते, पदवी लहत महान" के अनुसार उत्तम गुणों के लिए उत्तम संसर्ग की आवश्यकता है. कुछ विवरण से कहें तो इतना ही कि:—

१—यहलोग हकीकत राय धर्मी और गुरुगोविंदसिंह के सुपूतों की तरह धर्म की असली लगन का प्रमाण देते रहें. पतितोद्धारक नेताओं की तरह कष्टों का सामना शान्ति और धैर्य से करें.

२—इन्हें अन्त्यज, अछूत, पतित, नीच, अधमादि शब्दों से सम्बोधित न कर सुधरी दशा में आने तक '**व्रात्य**' कहना चाहिये. धन्धे से युक्त जातिनाम से भी घृणाभाव उडा दिया जाय.

३—इन जातियों में भी फिर परस्पर ऊंच नीच कल्पना है, इन लोगों को परस्पर उस का परित्याग करना चाहिये.

४—कन्याविक्रय, मद्यसेवन आदि द्विजसमान कुरूढियां इन्हें भी उडा देनी चाहिये, फिर ज्योंनार और वधूनिमित्त द्रव्याभाव से परधर्म के आश्रय की आवश्यकता न होगी.

५—कितने ही राज्यों में इन्हें पकवान बना कर खाने और उजले वस्त्र पहिनने की सख्त मनाई है, बेगार में बुरी तरह दबोचा जाता है, इस पाशविक अत्याचार को एक दम नष्ट करना चाहिये.

६— ' नोच्छिष्टंकस्यचिद्द्यात् ' के अनुसार झूंठन देना बंद कर मन्वनुसार भंगी आदि का दातव्य भोज्य पहिले निकालना चाहिये.

७—पाखानों में शौच के पहिले, पीछे तुरन्त प्रत्येक जन कोरी मिट्टी डाले, पानी अलग लेवे, उस पर एक बिंदु भी न डाले. जिससे भंगी की सुबिधा के अतिरिक्त बीमारियों से बड़ा बचाव होगा.

८—दुर्भिक्षों में भिक्षामंडलियां और भिक्षानिधि स्थापित किए जाया करें और तकावी से कृष्यर्थ भरपूर सहाय देना चाहिये.

९—वेश्या बनने के कारणों का प्रतीकार किया जाय.

१०—' यद्यपि शुद्धं लोकविरुद्धं नहि करणीयं नहि करणीयं ' ऐसी कल्पित घृणितोक्तियों पर हरताल फेरनी चाहिये.

११—प्राचीन मर्यादा पुरुषों की सत्यनिष्ठा और वीररस पूर्ण आख्यायिकाओं से प्रभावित कर उन के पुराने क्षात्ररक्त को उफना देना चाहिये. ' तुम क्षत्रियों की सन्तान हो ' यह विश्वस्त परिचय दिलाना उन यें जीवनसञ्चार करना है. उन के रोज़गारों को सहानुभौतिक आश्वासन से उभारना चाहिये. बडे २ पादरी वर्फ़ानी पहाडों तक आदमखोर मनुष्यशरीरधारी पशुओं में धर्मप्रचारार्थ बहुमूल्य स्वकाया को निरन्तर उन का आहार बनाते रहे, तद्वत् भक्तवत्सल नरसिंहमेहता को लक्ष्य कर भारतीय साँसिया, भील जैसी वीर जातियों, और 'सरकस, विद्यापारङ्गत नट तथा वेश्याओं तक को समाजोपयोगी बना लेना चाहिये, जिस निमित्त कि वैष्णवधर्म ने जन्म लिया.

भारतीय नेताओं को 'प्रतिष्ठाशूकरीविष्टा' और 'सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेद्विषादिव, के अनुसार परस्पर यश के डाके न डालते हुए प्रजाधारण में ही तल्लीन रहना चाहिये. हर्ष है कि प्रजाओं के आकर्षणार्थ भारत की अभ्युदय उषा में कुछ आत्मसमर्पक नेता चमकने लगे हैं. " धृञ्' धातु से धारण अर्थ में ' धर्म ' शब्द सिद्ध होता है. धर्म प्रजाओं को धारण करता है–छोड़ता नहीं '–जो धारण से युक्त है वही धर्म है." ' धर्म ' से उपक्रमण कर अब श्रीकृष्ण कथित इस धर्म से ही लेखावसान किया जाता है.

धारणाद्धर्म मित्याहुः धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत्स्याद्धारण संयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥
महा० कर्ण. ६९–५९

[कर्त्तव्य समाप्त.]

पतितोद्धारपूर्तिः